केरल ज्योति

अक्तूबर 2024

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

केरल हिंदी प्रचार सभा
ISO 9001: 2015

हिन्दी पखवाड़ा समारोह के समारंभ का उद्घाटन वी.एस.एस.सी. के निदेशक श्री.उण्णिकृष्णन दीप प्रज्वलन करके कर रहे हैं।

राजकीय महिला महाविद्यालय के हिन्दी विभाग द्वारा आयोजित पखवाड़ा समारोह में प्राचार्य श्रीमति अनिला जे.एस. पुस्तक विमोचन कर रही हैं।

हिन्दी अध्यापक एवं प्रशस्त कवि श्री सुरेश चेंतारा का वयनाड् प्रकृति प्रकोप की कविता रचने केलिए समादर हो रहा है।

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक

स्व. के वासुदेवन पिल्लै

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर

परामर्श मंडल

डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक

प्रो डी तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 61 दल : 7 अंक: **अक्तूबर 2024**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य - **प्रो.डी.तंकप्पन नायर** 6

कमल कुमार के उपन्यासों में स्त्री (पासवर्ड उपन्यास के विशेष संदर्भ में) **तंकम्मा.एम.एस** 11

किसान जीवन यथार्थ; 'पूस की रात' और 'बाजार में रामधन' के संदर्भ में - **अंजू.सी** 14

शैलेश मटियानी की कहानियों में चित्रित ग्रामीण एवं दलित जीवन **डॉ.षीनुजा मोल.एच.एन** 16

प्रश्नोत्तरी - **डॉ.रंजीत रविशैलम** 19

ममता कालिया की कहानियों में चित्रित स्त्री - **डॉ.संतोष गिरहे** 20

विकास बनाम विस्थापन : 'विस्थापित' उपन्यास के विशेष संदर्भ में **डॉ.अनघा ए.एस.** 23

'अकेली आवाज़' उपन्यास में बाल मनोवैज्ञानिकता - **डॉ.राजेष कुमार.आर.** 27

'धरती धन न अपना' में चित्रित दलितों का त्रासद जीवन - एक विश्लेषण - **डॉ.बिंदु.एम.जी** 30

स्त्री विमर्श से प्रभावित 'हंस' की कहानियाँ - **शरण्या.एस.एस** 34

डॉ. देवेंद्र कुमार धोदावत की कविताएँ 36

सफदर हाशमी के नुक्कड़ नाटकों में सामाजिक चेतना **डॉ.सुजित.एन.तंपी** 37

रेत समाधि : नारी जीवन की बृहद गाथा - **डॉ. गायत्री.एन** 40

माने ढ़ोने की हाइकू की काबिलियत : डॉ रंजीत रविशैलम के हाइकुओं के तनासिर में - **प्रो. डॉ. मनु** 43

देवयानम् (आत्मकथा) **मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना** 48

ज़िंदगी : एक लोलक (आत्मकथा) **मूल : श्रीकुमारन तंपी अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार** 49

मुखचित्र : केरल के पूर्व मुख्य सचिव श्री. वी.पी.जॉय ऐ.ए.एस. द्वारा सभा में आयोजित हिन्दी पखवाड़ा समापन समारोह के उद्घान दृश्य

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 25/-   आजीवन चंदा : रु. 2500/-   वार्षिक चंदा : रु. 250/-

A /c No. 57022786007   IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : संपादक : 7898515222

E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.in

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
अक्तूबर 2024

संपादकीय

भारत में विज्ञान की प्रगति भारतीय भाषाओं के द्वारा ही

इस सदी में विश्व में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का सर्वाधिक मुखर है। इस मामले में यूरोपीय भाषाओं का सबसे अधिक योगदान रहा है। यह बात अलग है कि इससे पहले भारत चीन और अरब देशों ने विज्ञान के क्षेत्र में बडी उन्नति हासिल की थी। किंतु कुछ ऐतिहासिक कारणों से स्थिति में बदलाव आया। यह भी सत्य है कि पहले ज्ञान व्यवसाय नहीं था। उस समय विज्ञान को भी ज्ञान के रूप में ही देखा जाता था। अब स्थिति बदल गई है। भारत में विज्ञान को जनता तक पहुँचाने के लिए विज्ञान के लिए भारतीय भाषाओं को माध्यम बनाना चाहिए। कब तक देश के प्रतिभाशाली छात्रों की पीढ़ी अंग्रेज़ी की गुलाम बनकर विज्ञान प्राप्त कर सकती है? अपनी भाषा में वे विज्ञान नहीं सीख सकते? आज भारत के पास विज्ञान और प्रौद्योगिकी की अपनी भाषा न केंद्र में है और न राज्यों में है। हालत ऐसी बनी है कि अशिक्षित लोग भी अपने बच्चों को अंग्रेज़ी पढ़ाने की होड में धकेल देते हैं। बाद में ही उनको मालूम हो जाता है कि अपना बच्चा न विज्ञान सीख लेता है और न अंग्रेज़ी। भाषाई सामंतवाद हमारे मनोविज्ञान का हिस्सा बन गया है जिसको तुरंत ही हमें समाप्त करना चाहिए।

इस प्रसंग में केरल ज्योति परिवार सब का ध्यान 1971 में आई.आई.टी. मद्रास के दीक्षांत समारोह पर प्रोफेसर एम.जी. मेनोन के भाषण की ओर आकृष्ट करना चाहता है जिसमें उन्होंने कहा था : "इस देश में प्रौद्योगिकी का पूरा विकास पूरी तरह अंग्रेज़ी पर निर्भर है। अंग्रेजी जाननेवाले लोग गिनती के हैं। ऐसी हालत में अंग्रेजी न जाननेवाले एक विशाल विज्ञानोन्मुख समुदाय का विकास कैसे हो सकता है और देश में विज्ञान का वातावरण कैसे बन सकता है? इतने छोटे अंग्रेजी जाननेवाले वर्ग के साथ हम विज्ञान का विकास नहीं कर सकते।" इसमें कोई संदेह नहीं है कि विज्ञानी सामंत उनके इस बयान का काफ़ी विरोध करेंगे।

प्रो.डी.तंकप्पन नायर
डॉ.रंजीत रविशैलम

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

दूसरा सर्ग

कर्मण्य और अनासक्त बालक

1. कराया गया नाणु का विद्यारंभ संस्कृत के बड़े विद्वान
और चेंपषंती के ग्राम-अधिकारी नारायण पिल्लै से
उन्हीं से पायी नाणु ने प्रारंभिक शिक्षा संस्कृत की और
पायी संस्कृत साहित्य व आयुर्वेद की शिक्षा माता-पिता से।
2. नाणु हो गये सिद्धहस्त आयुर्वेद में कम उम्र में ही
हुआ ऐसा अपने मामा लोगों के उत्तम शिक्षण से ही
नाणु थे बड़े मेधावी छात्र और लोगों को हुआ परिचय
नाणु के अद्‌भुत विशिष्ट व्यक्तित्व का उन्हीं दिनों में ही।
3. सोलह साल तक किया नाणु ने सम्यक अध्ययन
औषधों और औषध निर्माण की विधियों का
साथ ही सीख ली ज्योतिष के पंडित एक तमिल भाषी से
ज्योतिष और तमिल भाषा उन्हीं दिनों में ही।
4. कर्मण्य थे नाणु सदा और परिवार की खेती में गाय-
बैल चराने में और अन्य कामों में रहते थे संलग्न और
होकर तल्लीन वे करते थे रामायण-भागवतादि का पारायण
और पढ़ते थे उत्तम किताबें बैठकर पेड़ की डाली में।
5. कभी वे टहनियों पर बैठकर गाते थे कीर्तन रचकर
और कंठस्थ करते थे मधुर स्वर में संस्कृत श्लोकों को
यदपि वे होते थे घर के विविध कामों में निमग्न तदपि
एकान्त के समय दीखते थे वे लीन चिन्तन और मनन में ।
6. वे थे अनासक्त अपने परिवार संबन्धियों व मित्रों से
और थी उनमें सब जीवियों से अगाध करुणा व अनुकंपा
वे नहीं हो पाते सहमत प्रचलित अनाचारों से और मन में
उपजता था विद्रोह देखकर अत्याचार अवर्णों पर।
7. सभी थे प्रभावित उनकी प्रतिभा और असीम ज्ञान से
और चाहते थे उनके माता-पिता उच्च शिक्षा दिलाने को
लिया निर्णय दोनों ने सोच-विचारकर कायंकुलम भेजने का
जहाँ थी प्रकांड विद्वान रामन पिल्लै आशान की पाठशाला।
8. अध्ययन कर रहे थे साठ से ज़्यादा छात्र उस पाठशाला में
उस समय जिनमें कई हुए परवर्ती काल में विख्यात कवि
और विद्‌वान और इस कारण समझी जाती थी अत्यन्त
गौरव की बात उस पाठशाला में प्रवेश पाकर अध्ययन करना।

9. रामन पिल्लै आशान थे उस समय के प्रख्यात विद्वान
और कवि और साथ ही पारंगत थे संस्कृत साहित्य ज्योतिष
और वेदांत के और नाणु सन् अठारह सौ सतहत्तर में हुए
प्रविष्ट आशान के प्रशस्त गुरुकुल में उच्च शिक्षा के लिए।

तीसरा सर्ग

गुरुकुल में

1. बड़ा महत्व रखता है वर्ष सन् अठारह सौ सतहत्तर
श्रीनारायण गुरु के जीवन में इसीलिए कि तब से उनके
जीवन में आया एक नया मोड़ और इसी साल में
वे हुए प्रविष्ट रामन पिल्लै आशान के गुरुकुल में।

2. वे थे अग्रगण्य उस समय जीवित रहे संस्कृत के विद्वानों में
और उनका जन्मस्थल था कुम्मंपल्लि और जोड़कर
जन्मसथल को भी वे जाने जाते थे कुम्मंपल्लि रामन पिल्लै
आशान जिन्हें प्राप्त था समाज में सब का बड़ा सम्मान।

3. उस समय सामंती वातावरण था समाज में और जाति थी
एक समस्या पढ़ने-पढ़ाने में, और छात्रों के सहजीवन में भी
जनजीवन था कलुषित जातिभेद और ऊँच-नीच के कारण
नाणु ईष़व जाति के और रामन पिल्लै आशान थे नायर जाति के।

4. आशान थे उदार हृदय के और न उनमें थी संकीर्णता
लेशमात्र भी, पर प्रचलित कठोर जाति व्यवस्था से
वे थे विवश स्वगृह में नारायण को ठहराने को और
इस कारण हुआ अलग प्रबन्ध नारायण के आवास का।

5. उस ज़माने में थे कुछ धनी उदार सुमन परिवार जो
स्वभवनों में अपने बच्चों के सहित दूसरे परिवारों के
समर्थ बच्चों को भी वास कराकर सब सुविधाओं सहित
प्रदान करते थे शिक्षा और सारा खर्च अपने जिम्मे पर।

6. प्रसिद्धि-प्राप्त था ऐसे परिवारों में वारणाप्पिल्ली
जहाँ अपने बच्चों के साथ दूसरे समर्थ बच्चों को भी
वास कराकर प्रदान की जाती थी सहर्ष शिक्षा और
भोजनादि की व्यवस्था वारणाप्पिल्ली के धर्मिष्ठ लोगों द्वारा।

7. वारणाप्पिल्ली घर में निवास कर शिक्षा पाने से श्रीनारायण
गुरु सदृश ऐतिहासिक महत्व के एक महापुरुष वह घर भी
हो गया इतिहास का भाग और उस घर के निकट ही स्थित
रामन पिल्लै आशान की पाठशाला से वे पाते थे शिक्षा ।

8. बड़े जिज्ञासु और मेधावी छात्र थे नारायण और आशान हुए
अतीव प्रसन्न पाकर ऐसे शिष्य को और नारायण शीघ्र ही हुए
निपुण नाटक काव्य व्याकरण तर्कशास्त्र आदि में और अग्रणी
होने से पाठशाला में कहलाये 'मॉनिटर' अर्थात् चट्टंपी।
9. साठ से अधिक शिष्य थे रामन पिल्लै आशान के अधीन में
और परवर्ती काल में उनमें कई हुए विश्रुत कवि और
विद्वान जैसे पेरुनेल्ली कृष्णन वैद्य, वेलुत्तेरी केशवन वैद्य,
मणंपूर केशवन आशान एवं उदयांकुष़ी कोच्चु रामन वैद्य।
10. वारणाप्पिल्ली घर में हुआ करती थी बैठकें विद्वान सभा की
भाग लेते थे उनमें घर के सहृदय विद्वान और सभी छात्र
होता था कभी-कभी बहुत वाद-विवाद बैठक में लेकिन नारायण
भाग नहीं लेते थे, पर चर्चायें सुनते थे कुछ दूरी पर बैठकर।
11. जब लक्षण नहीं दीखता था वाद-कोलाहल की
समाप्ति का तब बुलाया जाता था नारायण को संदेह दूर
करने को प्रतिभागियों का और प्रस्तुत समाधान
लगता था सब को सही संतोषजनक और स्वीकार्य।
12. वारणाप्पिल्ली घर के प्रमुख थे कोच्चुकृष्ण पणिक्कर
जो थे सात्विक स्वभाव के और प्रतिभावान भी
जिन्हें अच्छा लगा था नारायण को और रामन
पिल्लै आशान को भी वात्सल्य था नारायण के प्रति।

चौथा सर्ग

श्रेष्ठ गुरु और उत्तम शिष्य

1. निज शिष्य होने पर भी नारायण के प्रति था
सम्मान का भाव आशान के मन में और था उनका
अनुमान कि आगे चलकर नारायण होंगे बहुत विख्यात
और उनका अनुमान स्थापित हुआ सत्य और हुए वे वंदनीय।
2. एक दिन देखा कुछ सहपाठियों ने नारायण को वारणाप्पिल्ली
घर के दक्षिण भाग में ध्यानमग्न और कुछ क्षणों के बाद
सहपाठियों ने देखा कि वे उठकर खड़े हुए और जब
वे चलने लगे तो गिर पड़े बेहोश होकर ज़मीन पर।
3. सहपाठियों ने बेहोश पड़े नारायण को उठाकर थामके
वारणाप्पिल्ली की बैठक में ले जाकर लिटाया और जब
आया होश उनको और पूछने पर सब लोगों के कि क्या
बात हुई तब मिला उत्तर कि कुछ भी नहीं हुआ है।
4. अगले दिन जब आये रामन पिल्लै आशान पाठशाला में
सुनायी एक विद्यार्थी ने गत दिन की घटना और

पूछने पर नारायण ने सुनायी कथा श्रीकृष्णदर्शन की और
उनकी अनुभूति प्रकट हुई थी वासुदेवाष्टक स्तोत्र रूप में।

5. श्रवण कर आठ श्लोकों में वर्णित श्रीकृष्ण-दर्शन-कथा
फौरन उठ खड़े हुए आशान और कहा देते हुए आशीर्वाद
कि हमने जिसे कल्पना में देखा उसे पूरा किया शिष्य ने
साक्षात् अपने अनुभव में ही और धन्य हूँ ऐसा शिष्य पाकर।

6. आशान के मन में हुई उस दिन से दुगुना वात्सल्य व सम्मान की
भावना और उन्हें निश्चय था नारायण होंगे विख्यात भविष्य में
एकान्तप्रिय थे नारायण और ईर्ष्यालु सहपाठी उनका हास-
परिहास करते थे 'नाणु भक्त' कहकर चिढ़ाते भी थे उनको ।

7. निरपेक्ष थे नारायण और दूसरे छात्रों का प्रभाव न पड़ता उनपर
और रहती थी उनके चेहरे पर गंभीर मुद्रा किन्तु वे थे सरल
कुछ कुटिल लोगों ने डाला विघ्न उनके व्रतानुष्ठान और
धार्मिक ग्रंथों के पारायण आदि में किंतु वे रहे निश्चिन्त।

8. वारणाप्पिल्ली घर के एक भागिनेय थे कुञ्ञु पणिक्कर
जो बहुत स्नेह और श्रद्धा रखते थे नारायण के प्रति
दोनों एकसाथ अलग रहते थे उन दिनों में अलग भवन में
और दोनों मिलकर करते थे पारायण पुराणेतिहासों का।

9. करते थे नारायण उन दिनों योग का भी अभ्यास
करते थे विशिष्ट प्राणायाम व ध्यान भी निरन्तर और
जागते थे अति प्रातःकाल में ही और जप स्नान
ध्यान आदि करके लेते थे सूर्योदय का आनन्द भरपूर।

10. था उनका विचार कि जो न पाता सूर्योदय का आनंद
प्रभात में वह जीवन में खो देता है एक अमूल्य वस्तु
वे लगे रहे लगातार लौकिक विषयों के साथ-साथ
आध्यात्मिक विषयों का ज्ञान पाने में भी कई स्रोतों से।

पाँचवाँ सर्ग

आध्यात्मिक अनुभूतियाँ

1. नारायण को हुई आध्यात्मिक अनुभूतियाँ अनेक प्रकार की
और करते थे व्रतानुष्ठान और भक्तिपूर्ण काव्य रचना
और जाग्रत व स्वप्न में दीखते थे उन्हें बालकृष्ण और
की थी रचना गजेन्द्रमोक्ष शीर्षक कविता की उन्हीं दिनों में।

2. उस समय गाया करते थे भक्त लोग गजेंद्रमोक्ष किंतु
दुर्भाग्य हमारा है कि अब याद नहीं है वह कविता किसी को
उपलब्ध नहीं हुआ है किसी को उसका लिखित रूप भी
यों कई कवितायें वे लिखकर देते थे भक्त मित्रों को।

3. उल्लेखनीय हैं ऐसी भक्तिपूर्ण रचनाओं में विनयाष्टकं
वासुदेवाष्टकं, गुहाष्टकं, भ्रद्रकाल्याष्टकं एवं देवीस्तवं
जो गायी जाती है आज कई भक्त जनों द्वारा और ये सारी
कवितायें समर्पित थीं अपने गुरु रामन पिल्लै आशान को।

4. फलस्वरूप इन कविताओं के सहपाठियों एवं अन्य
जनों की भावना बदल गयी उनके प्रति और उनमें भाव
बढ़ा श्रद्धा का और लगा उनको कि नारायण मामूली व्यक्ति नहीं
अपितु है बड़े प्रतिभावान सच्चरित्र और विशिष्ट दिव्यपुरुष।

5. नारायण थे बड़े दयालु प्रकृति के और करते थे सेवा
दीन-दुखियों की अपने आयुर्वेद चिकित्सा-ज्ञान से और
एक बार जब हुआ ज्ञात उन्हें कि एक दलित व्यक्ति कुष्ठ रोग से
पीडित व उपेक्षित है समाज द्वारा तो उनका मन हुआ दयार्द्र।

6. वारणाप्पिल्ली घर के प्रमुख थे कोच्चुनारायण पणिक्कर
जो थे सात्विक स्वभाव के सहृदय प्रतिभावान और
बड़े पारखी थे मानव प्रकृति के और करते थे बहुत पसंद
नारायण की विविध विषयों में निपुणता व अध्यात्मिक चेतना को।

7. वारणाप्पिल्ली के अपने अंतिम दिनों में नारायण बन गये
सब के प्रियवर और स्नेही पुरुष और हुए प्रभावित उनके
विपुल ज्ञान से और दो वर्ष की पढ़ाई के अपने अंतिम दौर में
उन्हें हुई अचानक बीमारी और बीमारी बहुत बढ़ गयी।

8. नारायण की बीमार होने की सूचना पाते ही चेंपषंती में
उनके मामा कृष्णन वैद्य आए उनको ले जाने को और
यात्रा नाव में ही थी और वे लेटे हुए थे सारा समय और
वे स्वस्थ हुए पूर्णतः कुछ दिनों में गाँव पहुँचने के बाद।

9. पाठशाला के अन्य विद्यार्थियों ने जब पूछा आशान से
कि क्या बीमारी थी नारायण को तो मिला उत्तर योंः
उस महात्मा का रोग तो एक निमित्त मात्र है जाने को
यहाँ से और उनका अवतार हुआ है लोकोपकरार्थ।

10. वे हैं सुंदर शांतचित्त करुणामय मनीषी और
त्रिकाल ज्ञानी भी और सौभाग्य है हमारा
कि उनके मुँह से हमने सुनी वासुदेवाष्ट की पंक्तियाँ
दुनिया जानेगी कि भविष्य में उस महात्मा की महत्ता।

11. जब नारायण छोड़ रहे थे पाठशाला तो उनके
वियोग में सब अंतेवासियों की आँखें हुई गीलीं
सब को उनका प्रस्थान था अप्रत्याशित और सब की
प्रार्थना थी जगन्नियंता से उनके शीघ्र स्वस्थ होने की। (क्रमशः)

कमल कुमार के उपन्यासों में स्त्री
(पासवर्ड उपन्यास के विशेष संदर्भ में)

तंकम्मा.एम.एस

कमल कुमार हिंदी की मशहूर कथाकार, उपन्यासकार, कवयित्रि एवं स्त्री विमर्शक है। इनकी रचनाओं का संबंध सीधे जन सामान्य से जुड़ता है। उन्होंने अपनी कृतियों में चतुर्दिक बिखरे हुए क्रूर यथार्थ, विडंबनाओं तथा विसंगतियों में पड़े गए आम जनता का मार्मिक वर्णन किया है। प्यार, अपनत्व, समर्पण भाव, धर्मनिरपेक्षता और मानवीय बोध का सच्चा चित्र इनकी रचनाओं में पा सकता है। इनकी विषय वस्तु चुनौतीपूर्ण है। इनमें जीवन के विविध पक्षों का चित्रण किया गया है। अशिक्षित, आदिवासी, दलित, गरीब, बाल-बच्चे, बूढे बुढ़िए , स्त्री, ट्रान्सजेंटर जैसे समाज से हाशिकृत अशक्त् तथा असहाय लोगों का जिह्वा बनकर साहित्य जगत में वह लगातार आवाज़ उठाती रहती है। 'पहचान', 'क्रमशः', 'फिर वहीं से शुरू', 'वेलेंटाइन डे', 'घर-बेघर', 'पूर्णविराम', 'अंतर्यात्रा', 'मदर मेरी और अन्य कहानियाँ' आदि उनके कहानी संग्रह है। 'पासवर्ड', 'आवर्तन', 'अपार्थ', 'हैमबरग', 'यह खबर नहीं', 'मैं घूमर नाचूँ' आदि उनके उपन्यास हैं।

राजस्थान की पृष्ठभूमि में लिखे गये कमल कुमार का प्रख्यात उपन्यास 'मैं घूमर नाचूँ' की नायिका बाला-विधवा कृष्णा है। उसे वैधव्य की जानकारी तक नहीं है। कृष्णा राजस्थान के समाज की रूढ़िवादिता की शिकार है। उसकी दूसरी शादी एक नामी डाक्टर के साथ होती है लेकिन उसके मन में कृष्णा का कोई स्थान नहीं है । एक बार भी वह पत्नी से प्रेम भरा व्यवहार नहीं करता है। इसके बीच में कृष्णा तीन बच्चों की माँ बनती है। पति के मत में पत्नी का धर्म पति की सेवा करना, बच्चों को जन्म देना, उसका पालन करना, पारिवारिक काम में लग जाना- ये ही हैं। पति के घरवाले भी उसके मत के सहमत करनेवाले हैं। रसोई के बाहर एक दुनिया है, उसके बारे में सोचना भी कृष्णा भूल जाती है। इतने में विदेश में काम करनेवाले एक आदमी से बेटी की शादी होती है। किन्तु कृष्णा का समान अनुभव बेटी को भी उसके पति और पतिगेह से होता है। एक दिन सारा संबंध तोडकर बेटी घर लौट आती है। कुछ ही दिनों के बाद कृष्णा और बेटी उसके घर छोड़कर बाहर की दुनिया की ओर जाती हैं। कृष्णा राजस्थान के पुरुष सत्तात्मक समाज पर पुरुषों की ओर से किए गए अत्याचारों का, महाभारत की द्रौपदी के समान हिम्मतवाली होकर सामना करके विजय प्राप्त करती है। पुरुष वर्चस्व कायम रखते राजस्थान के समाज में रहकर भी कृष्णा सधैर्य अपने जीवन की राह बनाती है।

कमल कुमार की चटुल बुद्धि के द्वारा रचित 'पासवर्ड' उपन्यास हिन्दी उपन्यास साहित्य का एक अत्यंत नवीन आविष्कार है। सन् 2010 में लिखे गए इस उपन्यास की कथा ई-मेल के फॉरमेट से लगातार आगे बढ़ती रहती है। यह मूलतः एक विशेष प्रकार की प्रेम कथा है, जिसका सूत्रधार 'मैं' अथवा नायिका है। इसका नायक डॉ. आशीष है जो विदेश में काम करता है। उसकी पत्नी है डॉ. आशिमा।

पारिवारिक एवं सामाजिक प्रेरणा से मज़बूर होकर पढ़ाई के बीच में नायिका को शादी करनी पडती है। लेकिन दांपत्य संबंधों में मानसिक दूरी एवं अपनत्व बोध का अभाव अनुभव होने पर वे दोनों आपस में अलग हो जाते हैं। तब से अकेली रहनेवाली नायिका मानसिक तनाव के कारण बीमार होती है। ऐसी स्थिति में अचानक उसके जीवन में डॉ. आशीष का प्रवेश होता है। उसके आगमन से नायिका को अपनी जिन्दगी में आशा और चेतना महसूस होता है। परंतु अपने प्रोफेशन को ज़्यादा महत्व

देनेवाला डॉ. आशीष इस के बीच में अमेरिका जाता है। अमेरिका पहुँचने के बाद डॉ. आशीष अपनी नायिका के ई-मेलों का छोटे-छोटे शब्दों में ही जवाब देता रहा मगर धीरे-धीरे इन छोटे - छोटे शब्दों के जवाब भी खत्म हो जाता है। 'पासवर्ड' की नायिका अपने प्रेमी से हमेशा मिलना चाहती है, उसके प्रति नायिका का प्रेम असीम तथा अटूट है। लेकिन अपने प्रेमी की ओर से उपेक्षा भाव पहचानने पर भी वह पराजय स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होती है। वह अपने जीवन को कला और साहित्य की सर्जनात्मकता के द्वारा सार्थक बनाने का निर्णय लेती है। इस संदर्भ के संबंध में प्रो. शुकदेव सिंह का कथन है, "पता नहीं क्यों कमल कुमार की सभी कहानियों में जहाँ प्रेम है, देह स्वर्ग है वहाँ अंतिम बिंदु पर एक हिचक एक नकार चमक उठता है।"[1] नायिका को ऐसा लगता है, जो जिन्दगी में हमें पाना चाहते हैं, जिसका पीछे चलते हैं हमें कभी नहीं मिलता। पुरुष अपने स्वार्थ और सुख के लिए किसी स्त्री के साथ रिश्ता बनाते हैं। औरत की कामनाएँ और खुशियाँ मानने के लिए पुरुष कभी तैयार नहीं है।

'यूज़ एंड थ्रो' व्यवस्था का जन्म आगोलीकरण से हुआ है। आदमी अपनी ज़रूरतों की पूर्ति के लिए किसी वस्तु का पूर्ण उपयोग करने के बाद उसे छोड देते हैं। जिस प्रकार बाद में सभी वस्तुओं को उपभोग मूल्य की दृष्टि से नापा उसी प्रकार पुरुष सत्तात्मक समाज ने स्त्री को भी वही खास दर्जा प्रदान किया। इस पर नायिका पुरुष के प्रति अपना विचार इस प्रकार प्रकट करती है, 'Man is basically a hunter, he enjoys chasing woman once, when the chase is over, it ends."[2] पुरुष, स्त्री को स्वावलंबी और स्वतंत्र बनाना पसंद नहीं करते हैं। स्त्री को अपनी संपत्ति मानकर घर में ही रखकर उसे संभालने का दायित्व वे स्वयं अपने को समझते हैं। परिवार, समाज या कर्मक्षेत्र में पुरुष, स्त्री की क्षमताओं, खूबियों जैसी कुशलताओं का लाभ उठाने के बाद उसे केवल 'स्त्री' मानकर रखते हैं। दोनों के खून - माँस से जन्मे अपने बच्चे बडे होने तक उसकी देखरेख स्त्री ही करती है। भविष्य में अपने पैरों पर खड़े होनेवाले ये बच्चे बूढी माँ की ओर आँखें मूँदते हैं और बुढापा अनाथ सी उसे निभाना पडता है। आगोलीकरण के इस जमाने में मीडिया का खतरा बढ़ता ही रहा है। बदली हुई परिस्थिति में हमारे किशोर युवक बहक जाते हैं और लडकियाँ अनजाने या बिना उसका परिणाम जाने, पर-पुरुषों के आगे स्वयं बिकाउ बनती हैं।

भारतीय समाज में प्रचलित कुरीति है कि नारी के जीवन के समस्त पक्षों पर पुरुष और समाज द्वारा प्रश्न उठाया जा सकता है, जिस के लिए वह जवाबदार होती है। नौकरी-पेशा स्त्री दिन भर कार्यालयी कामों पर व्यस्त रहकर घर वापस आने पर थकावट के कारण थोडी देर आराम करे तो घरवाले और पुरुष के प्रश्न शरों का जवाब उसे देना पड़ता है। कभी बीमार होती तो वह किसी से कुछ नहीं कहती । छोटी बीमारी तो होम्योपथी या घरेलू चीज़ों से ठीक कर लेती। अगर अस्पताल जाना पडता तो अपने-आप ही अपाईंमेंट लेकर एकाकी जाती थी।

लडकियाँ, हमारे यहाँ अपने बचपन से लेकर तरह-तरह के भोजन बनाने, पूजा-पाठ के तरीके सीखने के लिए बाध्य हो जाती हैं। माना जाता है कि अपने हाथ से बनाए स्वादिष्ट भोजन के द्‌वारा स्त्री अपने पति को वश में ला सकती है। यहाँ एक धारणा है, "पति के दिल में पहुँचना है तो पेट के रास्ते से जाया जाता है।"[3] स्त्री या पत्नी खाना पकाने का यंत्र समझनेवाले विचार के प्रतिरोध में नायिका यह प्रश्न करती है, "जिस व्यक्ति के दिल के रास्ता पेट से होता है, उसके दिमाग का रास्ता कहीं से है।"[4] अगर भोजन से स्त्री अपने पुरुष का दिल खींच सकती है तो उसके मन को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए प्रेम के सिवा और कोई रास्ता है ही नहीं मगर पुरुष स्त्री के रास्ते को पकडने में सक्षम नहीं होता है।

'पासवर्ड' उपन्यास का एकमात्र पुरुष पात्र डॉ. आशीष

उपभोग संस्कृति का शिकार है। उसकी नज़र में औरत केवल एक उपभोग वस्तु है, चाहे उसकी पत्नी हो, उसके मंगेतर हो या अपनी प्रेमिका नायिका हो। उसकी आँखों में ये तीनों नारियाँ बिलकुल बेकीमती चीजें हैं। इसलिए ही डाक्टरी करनेवाली अपनी पत्नी पर भी वह बेडियाँ डालने का प्रयत्न करता है। अपने पति के अवैध संबंधों की जानकारी मिलती तो स्वतंत्र, स्वावलंबी कामकाजी औरत डॉ. आशिमा तलाक करने का फैसला लेती ही नहीं अपने बच्चों के लिए संपत्ति का आधा भाग मिलने के लिए मुकदमा भी चलाती है।

'पासवर्ड ' उपन्यास में और भी अन्य नारी-पात्र हैं। अपने पति के मानसिक एवं शारीरिक शिकार बनने की प्रतिक्रिया स्वरूप भिन्न-भिन्न पुरुषों के साथ संबंध जोडनेवाली मंगला, परिवारवालों के लिए अपने जीवन के स्वप्न और अपनी पढ़ाई तक त्याग करके जीनेवाली नौजवान लड़की शकुन, छोटी उम्र में ही माँ बनी अमेरिकन लडकी टीना, जीवन-संघर्ष में स्त्रीत्व बेचने की मजबूर होनेवाली जैसी असंख्य अशरण - असहाय औरतों के चित्र 'पासवर्ड' में समाहित है।

पासवर्ड उपन्यास पूर्णतः प्रतिरोधात्मक या विद्रोहात्मक रचना है। यह नायिका के जीवन की घटनाओं और अनुभवों का चमत्कारिक रहस्योद्‌घाटन है। जीवन और लेखन के बीच यथार्थ को पहचानने की इस रचना, नारी की ओर परिवार और समाज में किए जानेवाले शोषण और अनीति के खिलाफ़ आवाज़ उठाने का आह्वान देती है। कमल कुमार की अपनी निजी कलात्मक भाषा शैली है। वह अपनी प्रभावमयी तथा प्रवाहमयी भाषा के ज़रिए बिंबों एवं प्रतीकों का प्रयोग प्रसंगानुकूल करके अपने पाठक को चकित और स्तब्ध करती है। नारी की मनःस्थितियों की अच्छी जानकार वह, नारी के उमडते हुए अंर्त भावों को समेटकर किसी ऐसी अनुभूति को संप्रेषित करने की उनकी तरीका प्रशंसनीय है। नारी जीवन के प्रत्येक पहलुओं को अच्छी तरह व्यक्त करने में वह सफल हुई है। इसलिए इस की नारी परिवेश और नारी जीवन से जुडी संवेदनाएँ बड़ी ही विश्वसनीय हैं। कमल कुमार अपने सर्ग संसार के विस्तृत फलक में बिना अतिशय भावुकता से कथ्य को मार्मिक बनाने में सदा जागरूक है।

'पासवर्ड' की शैली आत्मकथात्मक होने पर भी इसे आत्मकथा मानना सही नहीं लगता। उपन्यासकार कमल कुमार इसके मुख्य पात्र के नाम को गोप्य रखकर 'मैं' अर्थात प्रथमपुरुष शैली में इसे नाटकीय रूप देने का श्रेष्ठ कार्य किया है। श्री गोपाल रॉय जी के अनुसार "उपन्यास के किसी पात्र को कलाकार के स्थान पर लाकर प्रथम पुरुष शैली में कहानी को प्रस्तुत करने की यह प्रविधि वर्णित मन: प्रभाव को नाटकीय और तीव्र बनाने में समर्थ होती है।"[5] प्रथमपुरुष 'मैं' के प्रयोग से कथा अधिक प्रामाणिक लगती है। आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग स्वाभाविक निरंकुश एवं कभी-कभी क्रमहीन भी दिखाई पड़ती है। यही नहीं आज के उपन्यासकार अपने विचारों को क्रमबद्ध करके प्रकट करने की उपेक्षा करते हैं। शायद इसी वजह से कमल कुमार ने अपने इस उपन्यास में विगत और वर्तमान का मिश्रण करके कथानक को स्थापित किया है। इसलिए पासवर्ड की कथारचना में घटनाओं का कोई क्रम नहीं है। फिर भी एक कुशल शिल्पकार की भांति, त्रासदी के अंधेरे में तडपनेवाली नारी की जिजीविषा को अपनी अनोखी शैली में स्पष्टता के साथ अनावरण करके आगे बढ़ती वह, अपने आस्वादकों को विस्मित करती रहती है।

संदर्भ :

1. प्रो. शुकदेव सिंह, कमल कुमार - प्रेम संबंधों की कहानियाँ, पृ -9
2. कमल कुमार, पासवर्ड, पृ -128
3. कमल कुमार, पासवर्ड, पृ -128
4. कमल कुमार, पासवर्ड, पृ -128
5. गोपाल रॉय, अज्ञेय और उनका साहित्य, पृ-154

शोधार्थी, महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम

किसान जीवन यथार्थ; 'पूस की रात' और 'बाजार में रामधन' के संदर्भ में

अंजू.सी

साहित्य समय के साथ चलकर समाज को दिशा निर्देशन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार साहित्यिक विधाओं में अत्यंत महत्वपूर्ण और लोकप्रिय विधा है कहानी। बच्चों से लेकर बूढ़े तक कहानी सुनने एवं पढ़ने में दिलचस्पी लेते हुए दिखाई पड़ता है। आकार में छोटा होने पर भी कहानी का संबंध मानव जीवन की सच्चाइयों और संवेदनाओं से है। समय के अनुसार कहानी में नए नए विषयों के साथ पुराने विषयों को नये दृष्टिकोण से देखने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ रही है ।

हमारे समाज में पहले किसानों की अच्छी हैसियत थी मान-सम्मान थी लेकिन जमींदारी प्रथा के दौरान किसानों को गरीबी, ऋणग्रस्त जीवन तथा अन्य परेशानियों को सामना करना पड़ता है । आज के भूमंडलीकृत समाज में कृषि का औद्योकीकरण हुआ जिसके फलस्वरूप किसान लोग कभी आत्महत्या करने में विवश है तो कभी उसे अपना गाँव छोड़कर जाना पड़ता है।

किसान लोगों के त्रासदी पूर्ण जीवन यथार्थ को आधार बनाकर अनेक कहानियों की रचना हुई, इनमें प्रमुख है प्रेमचंद और कैलाश बनवासी। दोनों विभिन्न युग के साहित्यकार होने पर भी अपने-अपने समय और समाज के अनुरू प किसान जीवन का अंकन करने का सामर्थ्य दिखाया है। युगीन परिस्थितियों के फलस्वरूप किसानों की समस्याओं भी नई रूप लेकर हमारे सम्मुख आते हैं। इसलिए मैंने लेख के लिए प्रेमचंद की 'पूस की रात' (1930) और कैलाश बनवासी जी की 'बाजार में रामधन' (2004) चुना है।

तन तोड़ मेहनत करते हुए पूरी मानवता को खिलाने वाले ईश्वर है किसान, जिसे दूसरे जीवन दाता के रूप में देख सकता है। लेकिन इसी किसान को हमेशा गरीबी में जीना पड़ता है। सभी का भूख मिटाते हुए वे लोग भूखे से सो जाते है। 'पूस की रात' में हल्कू और 'बाजार में रामधन' में रामधन को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में गरीबी का शिकार होना पड़ता है। सरकार द्वारा गरीबी हटाने की योजनाएँ होते हुए भी वह सब किसानों तक पहुंचता नहीं है बल्कि बीच में रहने वाले इससे लाभ उठाते हैं।

कर्ज किसानों के लिए हर समय दुर्दशा का कारण बनती है। किसान का जन्म कर्ज में होता है वह कर्ज में ही जीता है और उसका अंत भी कर्ज के साथ हो जाती हैं । हल्कु की जिंदगी में यह समस्या स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वह इतनी मेहनत करने पर भी एक कंबल तक खरीदने के लिए तड़पता है क्योंकि उसे ठंड से ज्यादा भय सहना से है। आर्थिक दबाव के कारण वह कभी कभी अपना समझने वाले चीज को बेचना पड़ता है या गिरवी रखना पड़ता है। मुन्नी अपने पति हल्कू को बताती है ' मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जनम हुआ है।' यहाँ की दुख पूरी किसान लोगों का ही दुख है क्योंकि उनकी जिंदगी काम करने के लिए ही बनी है। रामधन की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है लेकिन औद्योगीकरण के नजरिए से देखने वाला पात्र इस कहानी में मौजूद है। छोटा भाई मुन्ना रामधन से बताता है 'यहाँ तो कितने ट्रेक्टर वाले है, उसे किराए से ले आयेगे। खेत जुताओ, मिजवाओ और किराया देकर छुट्टी पाओ।'

कृषि संस्कृति हमारी आधार शिला है इसलिए किसान खेती छोड़ना नहीं चाहते है लेकिन दोनों कहानियों में अपनी मजबूरी वश खेती से अलग करने की बात बताई गई है। मुन्नी कहती है 'मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी।किसी की धौंस तो न रहेगी।' पढ़े लिखे युवक मुन्ना भी खेती करना नहीं चाहता है क्यों कि उसे ज्ञात है खेती से कुछ नही होगा इसलिए वह धंधा करना चाहता है । कृषक जीवन

हमेशा ऐसी ही है चाहे वह प्रेमचंद जी का समय हो या बनवासी जी का समय। इस तरह धीरे धीरे खेती का अस्तित्व के साथ किसान का अस्तित्व भी नष्ट होने की संभावना कहानियों में पाई जाती है।

प्रेमचंद के समय में पूँजीपति लोग किसानों का शोषण कर रहा था लेकिन आज बाजारवादी दुनिया में नवपूँजीपति वर्ग इसका स्थान ले लिया है। पूस की रात में सर्दी का चित्रण किया है यह असल में पूजीवाद का प्रतीक के रूप में ले सकता है। वह हल्कू जैसे किसानों को पूरी तरह खा जाने में यह वर्ग विवश है। कहानी का अंश है 'कभी इस करवट लेटता, कभी उस करवट; पर जाड़ा किसी पिशाच की भांति उसकी छाती को दबाए हुए था।' 'बाजार में रामधन' नव पूजीवादी व्यवस्था का चित्रण प्रस्तुत करता है । आज बाजार की ताकत सर्वोपरि है।यह सिर्फ बेचने या खरीदने वालों की जगह नहीं है यहाँ विशिष्ट प्रकार की बाजार नीति चलती है। यहाँ जो भी वस्तु हो उसका मूल्य बाजार ही तय करता है। कहानी में बाजार होता समाज और समाज को निगलता बाजार स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है। कहानी में मुख्य तनाव बैलों को लेकर है। बैल की जगह कोई अन्य वस्तु है तो आसानी से बेच सकता क्योंकि मशीन बेच जाना बाजार की अनिवार्यता है। यहाँ भारत के रूढ़िबद्ध संस्कारों को किसी आधुनिक विकल्प के लिए तैयार करने की समस्या है।

किसान हमेशा मानवीय मूल्यों को बनाए रखने का प्रयास करता है। बैल, गाय, कुत्ता आदि से स्नेह एवं लगाव भी उसके मन में है और उसे अपने घर के सदस्य के समान देखपभाल करता है। जबरा हमेशा हल्कू के साथ होते है पूस की अंधेरी रात में दोनों एक साथ खेत जाते हैं। वहां किसी जानवर की आहट पाई तो वह चारों तरफ दौड़कर भूँकता रहा। एक कुत्ता होने पर भी कर्तव्य बोध उसके हृदय में पाई जाती है। रात को जब हल्कू सोने के लिए जबरा को पकड़ा उसका चित्रण प्रेमचंद ऐसा देता है ' कुत्ते की देह से जाने कैसी दुर्गंध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद से चिपटाए हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था , जो इधर महीनों से उसे न मिला था।'

रामधन और बैलों के बीच की रिश्ता भी अटूट है। इसलिए वह मुन्ना जो कुछ कहता है उसे मना करता है। किसानों के लिए बैल अपनी संपत्ति है कितना भी कष्ट हो आर्थिक तंगी हो जिसे बेचने के लिए वे तैयार नहीं होता। कहानी में बैलों को वापस ले जाते हुए देखकर लोग मजाक करते हैं। यहाँ रामधन सीधा साधा किसान अवश्य है लेकिन मूर्ख तो नहीं। 'कुछेक अनुमान लगाते है, शायद रामधन को बाजार की चाल ढाल नहीं मालूम। उसे मोल भाव करना नहीं आता। उसे अपना माल बेचना नहीं आता या फिर साफ बात है रामधन को अपनी बैल बेचना नहीं है।' सच तो यह है जो उसे बेचना नहीं चाहता।

हमारी संस्कृति की पहचान है कृषि। लेकिन इस कृषि कार्य करने वाले किसान की हालत अब भी दुखदायक है। पहले जमींदारी व्यवस्था या महाजनी सभ्यता के कारण किसानों को अनेक परेशानियाँ सहनी पड़ती थीं । आज के समय परेशानियाँ नए-नए रू प लेकर सामने आई हुई हैं जिसने किसानों से उनकी आत्मनिर्भरता एवं स्वाभिमान को छीन लिया है। प्रेमचंद और बनवासी ने अपने समय के अनुरूप किसान जीवन यथार्थ को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। इससे पता चलता है कि किसानों को हमेशा त्रासदीपूर्ण जीवन बिताना है। राष्ट्र में कितना ही विकास हो लेकिन किसान जीवन में कोई सुधार नहीं हुआ तो सब अर्थहीन है।

संदर्भ

1. पूस की रात - प्रेमचंद
2. बाज़ार में रामधन - कैलाश बनवासी
3. समकालीन हिंदी कहानी सारोकर और विमर्श - सं. डॉ.श्यामसुंदर पांडेय
4. इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिंदी कहानी - सूरज पालीवाल

शोध छात्र एवं हाई स्कूल अध्यापिका
जी जी वी एच एस एस नेम्मारा, पालक्काड

शैलेश मटियानी की कहानियों में चित्रित ग्रामीण एवं दलित जीवन

डॉ.षीनुजा मोल.एच.एन

शब्द कुंजी : कुमाऊँ अंचल, दलित, निर्धन, शोषित, आतंक,आक्रोश

शैलेश मटियानी के कहानी साहित्य में चित्रित निम्न वर्ग कुमाऊँ के अंचल से लेकर छोटे-बड़े नगरों एवं महानगरों से सम्बद्ध है। किन्तु इनकी कहानियों में चित्रित उपेक्षित, पीड़ित, शोषित और दबा-कुचला वर्ग चाहे जिस क्षेत्र, वर्ग, सम्प्रदाय से सम्बद्ध है अपने प्रकृत रूप में दिखाई देता है। इसका कारण शैलेश मटियानी की अत्यंत संवेदनशील, उस अन्तर्दृष्टि को माना जा सकता है जिसने उन्हें अपनी भोगी एवं देखी चीज़ों को यथार्थ रूप में पकड़ पाने की अद्भुत क्षमता दी है।

शैलेश मटियानी जी ने दलित साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है शैलेश मटियानी के अनेक कहानी संग्रह है जिनमें कुमाऊँ अंचल के जीवन यथार्थ को मानवीय संवेदना के स्तर पर चित्रित किया गया है। उन्होंने गरीबी का जीवन जिया है। उन्होंने स्वयं अपनी आंखों से दलित, असहाय, पीड़ित, निर्धन, निम्न लोगों के जीवन को देखा है। परिणामतः उनकी अधिकांश कहानियों में दलित चेतना का जिस प्रकार का वातावरण चित्रित किया है, उस वातावरण में उन्होंने जीवन-यापन भी किया है।

शैलेश मटियानी की निम्नलिखित कहानियों में कुमाऊं अंचल के ग्रामीण जीवन का चित्रण किया गया है - बाली, सुग्रीव, हरकू, हौलदार, बारूद और बच्ची, अर्धांगिनी, असमर्थ, छाक, तीसरा सुख, कुत्तिया के फूल, लो तुम भी खा लो, उत्तरा पथ, गृहस्थी, लाटी, काला कौवा, अंतिम तृष्णा, सुहागिनी, ऋण, वीर खंभा, घर गृहस्थी, एक शब्द, हीन नदी, रुका हुआ रास्ता, परिवर्तन, बंदिश, खरबूजा, आलाप, राजा बलि आदि । मटियानी जी ने कुमाऊँ के अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, नैनीताल, हल्द्वानी, काठ गोदाम, रुद्रपुर, रानीखेत, चंपावत, टनकपुर, बागेश्वर, आदि स्थानों का चित्रण किया है किंतु उनकी विशेष रुचि अपनी जन्मभूमि बाड़ेछीना तथा समीपवर्ती निम्न ग्रामीण अंचल रहे हैं। बाड़ेछीना तथा समीपवर्ती निम्न ग्रामीण अंचलों का चित्रण उन्होंने अपनी कहानियों में किया है- धौलछीना, छानी, सूपै, फ्ल्यू, तिलाडी, डिगोली, चनोली, गैर, नैल, पत्थर खानी, सैलना, काफीलीगैर, सिमारसार आदि।

'लो तुम भी खा लो' कहानी शीर्षक में लखुडियार, भैसियाछाना बाजार, छानाबस्ती, शक्तेश्वर मंदिर तथा गोलू देवता का उल्लेख है। 'कुत्तिया के फूल' शीर्षक कहानी में चंपावत, काठगोदाम का उल्लेख मिलता है। खरबूजा कहानी में फुलाडी गाँव पत्थर खाड़ी स्थानों का उल्लेख प्राप्त हुआ है। अर्धांगिनी कहानी में टनकपुर, चंपावत, पिथौरागढ़, हाट की कालिका, झूला धार, भराड़ी के जंगल का उल्लेख प्राप्त हुआ है। माता शीर्षक कहानी में मिहलगांव, चंडीकेश्वर मंदिर, पडियार, कोट, कुसुमछाना का चित्रण हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्य आंचलिक कहानियों में भी लेखक ने यथा स्थान प्रसंग अनुसार विभिन्न पर्वतीय ग्रामीण अंचलों का उल्लेख किया है।

हरकू हौलदार कहानी में माटगाँव का चित्रण हुआ है बारूद और बलूची कहानी में धौलछीना,बाड़ेछीना का उल्लेख करता हुआ पहाड़ों की प्रकृति सुंदरता और उसके इर्द- गिर्द बसे गाँव का उल्लेख करता है तथा लेखक कहता है-'धौलछीनामे वह मुँह उघाड कर खाने और टांग पसार कर सोने के दिन बिता रहा था उसका बड़ा भाई हयात सिंह अल्मोड़ा अस्कोट क्षेत्र का हरकारा था'। जिबूका शीर्षक कहानी में माट गाँव का चित्रण हुआ है तथा साथ ही में सिमार सार, सिधौली, आदि स्थानों का उल्लेख भी प्राप्त होता है। जिसमें जिबूका हर क्षेत्र में जीने की आस जगाता हुआ अपने पथ पर अग्रसर रहता है तथा वह आशा करता है कि समस्त जन जागृत हो। उत्तरा पथ शीर्षक कहानी में नारायण रेवाड़ी, देवाल, बाछेछीना, अल्मोड़ा, रानीखेत आदि प्रकृति मनोहरकारी ग्रामीण परिवेश तथा ग्रामीण जनजीवन का उल्लेख मिलता है।

मटियानी ने अपनी कालजई कृतियों से साहित्य जगत को गौरवान्वित किया है। इनके साहित्य में युग

चेतना, ग्रामीण परिवेश, अभिव्यक्ति की निपुणता, ग्रामीण अंचल की स्त्रियों का वर्णन, संप्रेक्षण की क्षमता विद्यमान है।

मटियानी जी की विद्वता की किरणों से उत्तराखंड साहित्य का ही नहीं वरण संपूर्ण हिंदी साहित्य का समस्त संसार आलोकित हो रहा है। मटियानीजी ने साहित्य साधना का अत्यधिक पथ पार किया है। मटियानी जी की रचनाओं में अत्यंत गंभीर, निर्मल, आवेगमय, और व्याकुल कर देनेवाले उद्धत रूप व्यक्तहुआ है जिनमें पहाड़ों के मजबूत पकड़ वाले ग्रामीणों का तथा ग्रामीण परिवेश का वर्णन लेखक ने किया है।

लेखक पिथौरागढ़ का वर्णन करते हुए अपनी कहानी में एक जगह कहते हैं - 'पिथौरागढ़ संपूर्ण जनपद पर्वत और घाटियों में विभक्त है यह पर्वत समूह दक्षिण में कहीं कम और कहीं अधिक है। इन्हीं सुंदर घाटियों में पिथौरागढ़ की सोरघाटी अपने अप्रतिम प्राकृत सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध है। सोर का अर्थ सरोवर से माना जाता है ऐसा कहा जाता है कि हिमालय की तलहटी में होने के कारण यहाँ सात सरोवर थे जिनका पानी धीरे धीरे सूखता चला गया। इस प्रकार शैलेश मटियानी जी पहाड़ी ग्रामीण अंचल तथा संस्कृति के बीच पले बढ़े साहित्यकार हैं उनकी रचनाओं में कुमाऊँ ग्रामीण परिवेश तथा ग्रामीण स्त्रियों का तथा ग्रामीण समाज का यथेष्ट वर्णन किया गया है जो हमें एक ऐसी संस्कृति तथा ऐसे समाज को जानने का अवसर प्रदान करता है जो कई सदियों से हमारे बीच मौजूद है तथा जिसका साहित्य में अपना स्थान है।

दलित जीवन की अभिव्यक्ति : दलित रचनाकार अपने परिवेश एवं समाज के गहरे सरोकारों से जुड़ा है। वह अपने निजी दुख से ज्यादा समाज की पीड़ा को महत्व देता है। सामाजिक चेतना उसके लिए सर्वोपरि है अपने समाज के दुख दर्द उसे ज्यादा पीड़ा देते हैं । शैलेश मटियानी जी ने कहीं न कहीं दलितों की पीड़ा को समझा है और अपनी कहानियों में इसे स्वर दिया है। अपनी मिट्टी के प्रति एक विशेष लगाव होने के कारण मटियानी जी की अधिकांश कहानियों का परिवेश कुमायूँ प्रदेश है । वे आजीविका के लिए दिल्ली मुंबई जैसे नगरों में दर-दर की ठोकरें खाते रहे। उनकी कहानियों में एक ओर जहाँ कुमाऊँ प्रदेश का परिवेश मिलता है दूसरी और वहाँ नगरी जीवन के विभिन्न आयाम मिलते हैं। उनकी कहानियों में भोगे हुए यथार्थ के कड़वे अनुभव मिलते हैं। उनकी कहानियों में अपने परिवेश का प्यार झलकता है तो दूसरी ओर समाज द्वारा प्रताड़ित और शोषित ऐसे लोग मिलते हैं जो नरक के समान जीवन जीने को विवश है। इन पात्रों में भिखमंगे, उठाईगिरी ,चोर , बदमाश, जेब कतरे आदि पात्र शामिल हैं। केवल इतना ही नहीं अपितु उनकी दृष्टि ऐसे पात्रों पर पड़ी जो उच्च मानवीय मूल्यों से युक्त है। यही कारण है कि उनके साहित्य में दलित जाति के समस्त सरोकारों का रेखांकन मिलता है। मटियानी जी ने तो जीवन के सबसे निचले स्तर की समस्याओं को बड़ी आत्मीयता के साथ अनुभव करते हुए अपने साहित्य में उसे उकेरा है।शैलेश मटियानी ने दलित जीवन संदर्भों पर पर्याप्त कहानियाँ लिखी हैं।

दलित जाति के लोगों में उच्च वर्गीय लोगों व पंडितों द्वारा भय और आतंक की स्थिति पैदा की हुई थी, जिनको मटियानी जी ने अपनी कहानियों में सहज ढंग से पिरोया। 'सतजुगिया आदमी' ऐसी कहानी है जिसमें हमें यह भय और आतंकवादी स्थिति मिलती है। प्रस्तुत कहानी के हरराम पुरोहित केशवचंद की मंत्र-तंत्र शक्ति से बहुत ही डरा हुआ और आतंकित है। हर राम के पुत्र परराम ने सब युवा शिल्पकारों को इकट्ठा करके एक संगठन बनाया और उसमें यह कहा कि कोई भी शिल्पकार ऐसा काम नहीं करेगा जिससे उनको घृणित व दलित समझा जाएगा। पुरोहित केशव चंद की जब भैंस मर जाती है , तब उसे उठाने के लिए वह हरराम को बुलावा भेजता है। इस पर हरराम अपने पुत्र परराम को इस काम को करने के लिए कहता है तो परिणाम न तो खुद जाता है और न ही किसी दूसरे को जाने देता है। तब उसका बाप हरराम क्रोधित होकर कहता है - "खुला ब्राह्मण द्रोह है। यह साले तू नहीं तो क्या यह 70 साल का बूढा तेरा बाप खींचेगा 10 मन की फैंस?"[1] हरराम पंडित सोच रहा था कहीं केशवानंद जी कुपित होकर कोई शाप न दे दें। केशवानंद के पिता पुरोहित राघवानंद की शक्तिहरराम अपनी आंखों से देखता आया है कि कैसे-कैसे विषैले सांपों, भूत प्रेतों को, मंदिरों से ही बांध देते थे। फनफना कर डंसने को आता हुआ विषधर सांप उनके 'ओम ओम' कहने मात्र से अपनी ही

ठौर स्थिर हो जाता था और ऐसे नाचने लगता, जैसे कोई संपेरा बीन बजा - बजाकर उसे वश में कर रहा हो ।

'लाटी' कहानी में दलित नारी चरित्र के प्रति, इस प्रकार का कथन कहीं न कहीं भारतीय समाज की संवेदन शून्यता ही व्यक्त करता है जिससे दलित वर्ग ने घोर उपेक्षा पाई है।शैलेश की 'परिवर्तन 'कहानी दलित संदर्भों की दृष्टि से प्रभावशाली है। क्योंकि इस कहानी में दलित जीवन से संबद्ध वे सारे प्रसंग हैं जिससे दलित विमर्श किया जा सकता है। देवराम और जसुली 'परिवर्तन' कहानी के दलित चरित्र हैं ये दलित चरित्र गैरदलितों की उपेक्षा एवं अमानवीयता से एक साथ संत्रस्त और आक्रोशित हैं। कहना यह है कि इस कहानी में वर्षों से पीड़ित दलित वर्ग में गैरदलितों के आतंक से मुक्ति की छटपटाहट दिखाई देती है। इसीलिए तो इस कहानी का दलित चरित्र देवराम अपनी बिरादरी के सामाजिक उत्थान के लिए चिंताशील दिखाई देता है। लगभग चालीस-पैंतालीस वर्षों से इसी डुमौड़िया विमलकोट की धरती से लगा हुआ देवराम कभी-कभी बहुत दुखी और कुंठित हो उठता है कि ठाकुरों और ब्राह्मणों की तुलना में बहुत ही कठोर परिश्रम करने पर भी, उसकी जाति बिरादरी के लोगों को न तो आर्थिक सुविधाएँ हो पाती हैं और न सामाजिक क्षेत्र में ही उन लोगों को आदर मिल पाता है।"[2] यह कहानी दलित चेतनावाहक है जिसमें समकालीन भारतीय समाज में व्यक्ति स्वतंत्रता की अनुगूँज है जो शैलेश के समकालीन बोध को प्रदर्शित करती है।

'भँवरे की जात' और 'गृहस्थी', दोनों कहानियों में कुमाऊँ अंचल की नाच-गाकर आजीविका चलाने वाली मिरासी दलित जाति से संबद्ध नारी जीवन का मार्मिक चित्रण हुआ है। इनमें चित्रित दलित नारी चरित्र मुख्य रूप से आर्थिक कठिनाइयों से संत्रस्त हैं और इस कहानी की नारी चरित्र गैरदलितों से भी कम नहीं छली जाती है। फिर भी ये कहानियाँ अलग-अलग प्रभाव छोड़ती दिखाई देती हैं।यद्यपि इन दोनों कहानियों की नवयुवती दलित चरित्र आर्थिक कठिनाइयों से उबरने के लिए नए मूल्यों को तलाशती दिखाई देती है किंतु इस तलाश में भँवरे की जात कहानी की दलित चरित्रा कुंतुली स्वयं तलाश बन जाती है क्योंकि सामान्यतः एक दलित नवयुवती का गैर दलित विवाहिता पुरुष के साथ प्रेम प्रसंग का जो हश्र होता है, अंततः वही उसके साथ भी होता है। किंतु प्रेम प्रसंगों में विफलता के बावजूद वह कहानी के अंत में महान् आदर्श स्थापित करती दिखाई देती है वह जब अपनी पुत्री के गैरदलित पिता के पास अपने हक के लिए जाती है तो वह उसकी पत्नी से प्रभावित होकर अपना दावा छोड़ती चित्रित हुई है - "मैं तो नाच-गाकर भी जिन्दगी ठेल लूँगी लेकिन तुम कहाँ तक मायके में पड़ी रहोगी। मैंने अपना दावा छोड़ा।"[3]

'अहिंसा' कहानी का चरित्र जगेशर दलित वर्ग से सम्बद्ध है वह शासकीय व्यवस्था से सर्वाधिक संत्रस्त है। आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद अपनी पत्नी के उपचार के लिए धन एकत्रित करता है किन्तु सरकारी अस्पतालों के कार्यरत कर्मचारियों एवं डॉक्टरों की अमानवीयता एवं भ्रष्ट आचरण के कारण वह ऑपरेशन से पूर्व ही दम तोड़ती चित्रित हुई है।

'जुलूस' कहानी में चित्रित दलित चरित्र वर्तमान भारत की घिनौनी राजनीति से यंत्रणा पाते चित्रित हुए हैं। इस कहानी की दलित नारी चरित्र बुधा राम की विधवा माँ सर्वाधिक कष्ट पाती है क्योंकि राजनीति प्रेरित पुलिस तन्त्र के द्वारा महालक्ष्मी के दिन जुवारियों की जो धर पकड़ होती है उसमें उसका बेटा भी पुलिस द्वारा गिरफ्तार होता है। कहानीकार ने उसे अनेक प्रकार की आशंकाओं से ग्रस्त होते चित्रित किया है - कहीं इसकी सरकारी दफ्तर की चपरासगीरी भी न चली जाए? कहाँ अगले ही महीने गौना सिर पर और कहाँ थुक्का फजीहत आ गयी।

शैलेश मटियानी की दलित कहानियों का विवेचन और विश्लेषण करने पर तीन प्रकार की मानसिकतायें दिखाई पड़ती हैं। एक वर्ग वह है जो समस्या आने पर सामाजिक व्यवस्था के आगे लाचार हो जाता है और अपने प्रति हो रहे सामाजिक व्यवहार को नियति मानकर चुप रहता है। परिवर्तन शब्द से कोसों की दूरी बनाकर चलने वाला यह वर्ग ईश्वरीय विधान और ईश्वरीय प्रेरणा को अवलंब बनाकर दुःख सहता रहता है। केवल सहना जानता है और जो जिस रूप में है उसे स्वीकार करने की स्थिर मानसिकता के साथ जीवन जीने को अभिशप्त है। वहीं एक अन्य वर्ग या समूह ऐसा भी है जो अपने प्रति हो रहे अत्याचारों के खिलाफ आक्रोश तो रहता है परन्तु कुछ कार्यवाही करने से गुरेज करनी वाली और सामाजिक कुव्यवस्थाओं के

आगे घुटने टेक देने वाली मानसिकता को दूसरी श्रेणी की मानसिकता में रखा जा सकता है। अपनी मान मर्यादा और आत्मसम्मान की रक्षा के लिए परम्परागत समाज व्यवस्था का प्रखर विरोध करता है, कुव्यवस्थाओं में लिप्त व्यक्तियों/ संस्थाओं के प्रति अपना आक्रोश दर्ज करता है, सतत संघर्ष करता है और समाज व्यवस्था से टकराता है। इस प्रकार की मानसिकता को हम उत्कृष्ट श्रेणी की मानसिकता भी कहा जा सकता है, जो हार मानने को तैयार नहीं है और जिन्होने नियति या भाग्यवादी दृष्टिकोण को सिरे से खारिज कर दिया है, जिन्हें भीख नहीं अधिकार चाहिए।

उपसंहार : मटियानी जी की दलित चेतना विषयक दृष्टि किसी वाद या पूर्वग्रह से प्रेरित नहीं है। दलित वर्ग से ही वे शक्ति पाते हैं। उस शक्ति का उपयोग वे की आवाज़ बुलंद करने के लिए करते हैं। दलित जीवन के विशल अनुभव मटियानी को कहानी के शिखर पर पहुँचाती है। मटियानी जी की कहानियों में दलित जीवन एक नया दृष्टिकोण प्राप्त होता है। वह आजीवन आर्थिक संघर्षों से जूझते रहे। फिर भी उनमें स्वाभिमान है, एवं नौतिक मूल्य है।उनकी कहानियों में अमानवीयता की प्रवृत्ति भी मिलती है लेकिन यह प्रवृत्ति समाज के दोनों वर्गों के लोगों में देखने को मिलती है।दलित जीवन का व्यापक और विशाल अनुभव और उनकी जिजीविषा एवं संघर्ष को कहानी में ढाल देने की सिद्धहस्तता ही मटियानी को कहानी के शिखर पर पहुँचाती है। मटियानी की कहानियों से गुज़रना भूखे-नंगे, बेसहारा और दबे-कुचले लोगों की करुण कराह, भूख और मौत के आर्तनाद के बीच से गुज़रना है।

संदर्भ :

1 सतजुगिया आदमी, बर्फ की चट्टानें, पृ. 129

2. शैलेश मटियानी, तीसरा सुख, पृ. 57

3. शैलेश मटियानी की संपूर्ण कहानियाँ - 2, पृ. 101

सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष,
हिंदी विभाग
सरकारी कॉलेज नेटुमंगाड्, तिरुवनंतपुरम, केरल

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. ‘गुलेनार’ उपन्यास का रचनाकार कौन है?
2. ‘ज़्यादा अपनी कम परायी’ किस विधा की रचना है ?
3. हिंदी में ‘साक्षात्कार’ विधा के प्रवर्तक कौन है ?
4. “यह वह कहानी है कि जिसमें हिंदी छुट। और न किसी बोली का मेल है न पुट।” किसकी पंक्तियाँ है ?
5. लल्लूलाल उर्दू को क्या कहते थे?
6. नवनीतलाल चतुर्वेदी किस महान साहित्यकार के गुरु थे?
7. ‘हिंदी भाषा का पाणिनी’ किसे कहा जाता है?
8. ‘निर्गुन कौन देस को बासी’ किसकी उक्ति है?
9. रसखान का मूलनाम क्या था?
10. वल्लभाचार्य के गुरु का नाम क्या है?
11. ‘कैंची’ किस भाषा का शब्द है?
12. डॉ.गणपति चंद्र गुप्त ने भूषण का मूलनाम क्या माना?
13. ‘इतिहास साक्षी है’ किसका निबंध संग्रह है?
14. ‘श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है’ - किसका कथन है?
15. ‘काव्यसुधाकर’ आलोचना ग्रंथ किसका है?
16. ‘अक्षर-अक्षर यज्ञ’ किसकी पत्रसाहित्यपरक रचना है ?
17. दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक कौन थे?
18. ‘नदी को बहने दो’ किसका काव्य संग्रह है?
19. ‘ज़िंदगी और ज़ोंक’ किसकी कहानी है?
20. रसगंगाधर किसका प्रौढ़ ग्रंथ है?

उत्तर : पृष्ठ. 33

ममता कालिया की कहानियों में चित्रित स्त्री

डॉ.संतोष गिरहे

किसी भी देश की स्थिति को जानना है तो सबसे पहले उस देश के महिलाओं की क्या स्थिति है? यह देखना आवश्यक होता है। हम प्राचीन काल में देखते है तो वेदों में महिलाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। जिन्होंने अपने योगदान से कुछ कर दिखाने की कोशिश की है। वैदिक युग में महिलाओं को पढ़ने-लिखने और ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था। साथ-ही-साथ हम अगर बौद्ध काल की महिलाओं पर प्रकाश डाले तो उस युग में भिक्षु संघ ही नहीं तो 'भिक्षुणी संघों' की स्थापनाएँ भी हुई थी, परंतु बाद में उनका महत्व कम हुआ है। इस संदर्भ में आशा रानी व्होरा लिखती हैं कि, "बौद्ध धर्म ने विवाहित, अविवाहित, विधवा, वंध्या, पतित सभी को स्वीकार कर इस युग की करू णा-पात्र नारी को घर के संकुचित दायरे के बाहर निकल कर संसार की सेवाओं के हेतु संन्यास की अनुमति दी। .....भिक्षु संस्थाओं में नारी का स्थान अपेक्षाकृत हेय ही रहा।"[1] मौर्य तथा गुप्तकाल अर्थात पूर्व मध्ययुग में नारी की स्थिति कुछ खास नहीं थी। मौर्यकालीन स्त्री की वास्तविक स्थिति स्पष्ट करते हुए वी.डी. महाजन कहते हैं, पुरुष एक स्त्री के होते हुए भी कई विवाह कर सकता था, परंतु स्त्रियाँ ऐसा न कर सकती थी। कुछ स्त्रियों को संतान के लिए रखा जाता था और कुछ को केवल शारीरिक सुख के लिए। स्त्रियों की स्थिति को बहुत अधिक उन्नत नहीं कहा जा सकता। उन्हें बाहर जाने की स्वतंत्रता न थी। वे पति के विरूद्ध काम नहीं कर सकती थी।"[2] इससे पता चलता है, कि स्त्री का अस्तित्व उसका महत्व धीरे-धीरे कम-कम होता गया है। गुप्त काल में तो उस पर और अधिक कठोर नियम लग गये थे। तब उसे किसी के घर भी जाना हो तो पति की अनुमति लिए बिना नहीं जा सकती थी, इतना ही नहीं, तो वह पति के सोने के बाद सोए और जागने के पूर्व उठे इस तरह की अत्यंत नियमबद्ध जीवन पद्धति से उसे गुजरना पड़ा है।

मध्ययुगीन स्त्री पर तो और अधिक बंधन लादे गये थे। जिसमें सती प्रथा हो, बालविवाह हो, पर्दापद्धति हो, या महिलाओं के अपहरण की समस्या, न जाने कितनी चौखटों में उसे चारों ओर से घेर लिया था। जिससे उसका स्वतंत्र अस्तित्व मानों जंजीरों बंध गया हो। यहीं स्थिति कम अधिक मात्रा में भारत के आजादी तक बनी रही, परंतु बीच में जो सुधारकों का दौर था उसमें कुछ मात्रा में उसके मान-सन्मान में कुछ मात्रा में बदलाव की स्थिति जरूर आयी है। आजादी के बाद में संविधानिक एवं नारी आंदोलन के कारण स्त्री चेतना की दृष्टि से उसे एक नया वातावरण मिला है। जो उसके अस्तित्व को सिद्ध करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण साबित हुआ है। इसका ही लाभ उठाते हुए बहुत-सी स्त्रियों ने अपनी लेखनी से अपने अस्तित्व की पहचान को उजागर करने का प्रयास किया हैं।

ममता कालिया ने अपनी कहानियों में बदलते जीवन मूल्यों के लिए जिम्मेदार सामाजिक परिवेश पर प्रकाश डाला है। जिसमें बड़े दिन की पूर्व साँझ, अपत्नी, पिछले दिनों का अंधेरा, साथ, वे, लगभग प्रेमिका, निवेदन, जाँच अभी जारी है, अनुभव आदि कहानियों में स्त्री-पुरुषों के संबंधों को परिभाषित किया है। 'अपत्नी' कहानी में पहली पत्नी होते हुए भी दूसरी स्त्री के साथ विवाहबाह्य संबंध स्थापित किए गये थे। नायिका कहती है, "जब हम लौटकर आये, लीला उठ चुकी थी और ब्लाउज के बटन लगा रही थी। जल्दी-जल्दी में हुक अंदर नहीं जा रहे थे।"[3] तो पिछले दिनों के अंधेरे में कपूर और रूचि विवाहपूर्व ही शारीरिक संबंध स्थापित करते हैं, "आज वह रुचि में घुल जायेगा, देर तक के लिए। पर अभी सिर्फ छूना भी उसे पर्याप्त लग रहा था। रूचि उसकी ओर सटी, तो उसने उसके ओठों को मुँह में ले लिया। वह रूचि की हर माँग समझ सकता था।"[4]

इसके साथ ही ममता कालिया ने अपनी कहानियों में पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के बीच के कटु एवं नीरस संबंधों का लेखा-जोखा भी प्रस्तुत किया गया है, जिसके कारण पारिवारिक बिखराव की स्थितियाँ पैदा हो रही हैं। 'मंदिरा' कहानी में इस समस्या पर प्रकाश डाला गया है। मंदिरा विवाहित होते हुए भी अपने कॉलेज के सुविमल

बॅनर्जी से प्रेम करने का सोचती है, "रात देर तक मंदिरा को नीद नहीं आयी। चाँद रह रहकर पगलाता रहा। वह ज्वार की तरह चढ़ती रही। बगल की बिस्तर पर भाटे की तरह बाजपेयीजी पड़े-पड़े सोते रहे। मंदिरा ऊब के कारण उकता गयी। उसे लगा कुछ करना ही होगा। ऐसे जीवन क्या जनवरी भी नहीं बितायी जा सकेगी। रात के सन्नाटे में उसने अपने साथ एक लम्बी बातचीत की और अपना मन तैयार कर लिया। वह अपने विभाग के सुविमल बॅनर्जी से प्रेम कर सकती है।"[5] ऐसी ही स्थितियाँ माता-पिता और संतानों के बीच भी बन रही हैं, जिसके कारण घर-परिवारों का टूटना सामान्य बात बन गयी। 'कवि मोहन' कहानी में पति स्वभाव के कारण पत्नी परेशान थी। विवाह के पच्चीस साल बाद अगर ऐसी स्थिति हो तो कितनी गंभीर समस्या है, "घर की पूरी अर्थव्यवस्था पिता के हाथ में थी। उसके हाथ में तो चाबियाँ तक न थीं, वह भी पिता के जनेउ से बंधी रहती थी। ब्याह के पच्चीस साल बाद भी उन्हें यह छूट नहीं थी कि वे अपनी मर्जी से देहरी पर आये दीन को एक मुठ्ठी चून भी दे सकें।"[6]

इतना ही नहीं ममताजी ने नाते-रिश्तों में आ रही कमियों की ओर भी इंगित किया हैं। जिसमें भाई-बहन, सास-बहू, देवर-भाभी, देवरानी-जेठानी, ननद-भाभी जैसे रिश्तों में स्वार्थ प्रेरित मनोवृत्ति एवं आत्मीयता का अभाव के परिणामस्वरूप इनका महत्व कम होता हुआ दिखाई दे रहा है। 'बीमारी' कहानी में ऐसे रिश्तों पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया गया है। जिसमें भाई अपने बहन के बीमार होने पर उसके घर जाता है। तब उसके द्वारा बहन पर किये गये खर्च का पूरा हिसाब बहन से वसूलता है। "भाई ने झेंपते हुए अपनी जेब से पर्स निकाला और कई कागज उलट-पलट कर एक कागज मुझे थमा दिया। उसमें उन पैसों का हिसा था, जो इधर-उधर मेरे सिलसिलें में आने-जाने में खर्च हुए थे और जो फल मेरे लिए लाए गए थे।"[7] वर्तमान सामाजिक परिवेश की ऐसी अनेक विसंगतियाँ और विकृतियों पर उन्होंने आवाज उठाई हैं । आज विवाह की अनेक प्रथा और परंपराएँ इतनी विकृत हो चुकी हैं, कि जिसके कारण वधु के पिता को दहेज जैसी विकृत प्रथा के कारण कितनी मुष्किलों का सामना करना पड़ता है। 'बिटिया' कहानी में वीरेश्वर बाबू को चार बेटियाँ थी, जिसमें से पहली बेटी के विवाह में ससुराल वाले पूरी एक लिस्ट ही थमा देते हैं। "वीरेश्वर बाबू कुछ-कुछ शांत कुछ अशांत वापस आ गए। घर में सलाह मशविरा हुआ। पत्नी बोली, लिस्ट बनाकर खरीदारी की जाती है, यह तो सुना था, पर ब्याह भी होते हैं, ऐसा कभी न देखा न जाना।"[8] कहानी वर्तमान समय में दहेज की भीषणता को अभिव्यक्तकरती है। जिसका सबसे बड़ा खामियाजा स्त्री को भूगतना पड़ता है। ममता कालिया ने अपनी कहानियों में आर्थिक विषमता के साथ-साथ वर्तमान समाज जीवन की अनेक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है। जिसमें बेरोजगारी, अशिक्षा, भ्रष्टाचार आदि के आलावा मध्यमवर्ग और निम्नवर्गीय समाज की स्त्री का संघर्ष अत्यंत बारीकी से अंकित किया है। यह संघर्ष एक ओर गरीबी से तो दूसरी ओर जाति-पाँति जैसी समस्याओं के कारण हो रही प्रताड़ना से संबंधित है। 'चोट्टिन' कहानी में सुखिया अपनी गरीबी की जिंदगी से जूझ रही थी। "एक बार उसका मन हुआ, वह नहा डाले पर नहाने के लिए उसे फ्राक उतारनी पड़ती और जाँघिया उसने पहना हुआ नहीं था। जाँघिया उसके पास था ही नहीं। पिछले हफ्ते से नहीं था। सिर्फ एक तो था, वह भी चिथड़ा होकर खत्म हो गया। फ्राक भी तो बस यही है।"[9]

'रोशनी की मार' कहानी में जाति-पाँति और छुआ-छूत की समस्या से दो-दो हाथ करती स्त्री शक्ति का चित्रण किया गया है। रोशनी की मार कहानी में तिवारिन अपनी घर में काम करनेवाली सफाई कर्मचारी के साथ छुआ-छूत मानती थी। "किसी-किसी दिन तिवारिन को शक हो जाता कि बिटिया की धोती फ्रिज से छू गई है। पहले वह उस बेढंगे बंगले पर झींकती, फिर दबी जबान में बिटिया को दो-चार गालियाँ देती। तब भी तसल्ली न होती तो वह साबुन-पानी और स्पंज से फ्रिज रगड़ने लगती।"[10] ममता कालिया ने अपनी कहानियों में इस तरह के जाति-पाँति का मुँह तोड़ जवाब भी दिया है। तिवारिन का जान बिटिया ने बचायी थी परंतु वही तिवारिन ठीक होने पर उसके साथ जब छुआ-छूत मानती है, तो बेटियाँ उसे इस तरह से जवाब दे देती हैं, "ठीक हो गई तो गुर्राए लगी। हमरे हाथ का गरमाया दूध पानी सब तोहार पेट माँ है। वो बखत भी हम ऐहि रहें, कौनो अउर नाहीं। आप बड़मनई हमसे छूत मानत हैं। जब आप बेहोस पड़ी रहीं हमहिं चौका-चूल्हा छीकर काम किया, ना परचौ तो पूछ लो जायके डागदर साब से।"[11] इतना कुछ करने के बावजूद भी बिटिया उपेक्षा की पात्र बन जाती है।

स्त्री अपने भावबोध से अपने बदलते दृष्टिकोण को भी उजागर कर रही है। जिसमें प्रेम विवाह, पारंपारिक विवाह, अनमेल विवाह, विवाहेत्तर प्रेमसंबंध तथा लिव इन रिलेशनशिप जैसी अनेक स्थितियों से वह आज गुज़र रही है। वह अपनी मनमर्जी से निर्णय ले रही है। जैसे - दो जरूरी चेहरे, जितना तुम्हारा हूँ। 'पीली लड़की' एक 'जीनियस की प्रेमकथा', 'बोलनेवाली औरत' आदि कहानी की नायिकाओं ने अपनी मर्जी से प्रेम विवाह किया है, परंतु फिर भी उन्हें अन्याय, अत्याचार और शोषण का सामना करना पड़ा है। 'बोलनेवाली औरत' में दीपशिखा को पति और सास की प्रताड़ना सहनी पड़ती थी। इतना ही नहीं तो पति और सास का देखा देखी बच्चे भी उसके साथ उनके जैसा ही व्यवहार करने लगे थे। इस संदर्भ में नायिका दीपशिखा कहती है, "शिकार तो मैं हूँ, तुम सब शिकारी हो, शिखा कहना चाहती थी पर जबड़ा एकदम जाम था। होंठ अब तक सूज गया था। शिखा ने पाया, परिवार में परिवार की शर्तो पर रहते-रहते न सिर्फ वह अपनी शक्ल खो बैठी है वरन अभिव्यक्तिथी।"[12]

अनुभव कहानी की नायिका अपने पति के साथ अनबन के कारण डिंपी से संबंध स्थापित करती है। यह सब घर का नौकर रामू जानता था, "इस बेवकूफ डिंपी साहब के पीछे वह अपना सोने जैसा आदमी नहीं पहचान रही थी। फिर रामू झूठ कैसे बोलता जब अभी चार बजे शाम उसने डिंपी साहब के लिए चाय बनाई थी और उनके जाने के बाद मेमसाब के कहने पर बिस्तर की चादर भी बदली थी।"[13] 'एक जीनियस की प्रेम कथा' में कविता और संदीप का प्रेम विवाह हुआ था, परंतु अब रिश्तों में इतनी खाई तैयार हुई है कि रिश्ता कभी भी टूट जाए। दोनों हमेशा झगड़ते रहते हैं, संदीप कहता भी है, "असल में नायिका और खलनायिका अलग-अलग लड़कियाँ नहीं होतीं। एक ही लड़की आपके जीवन में नायिका की तरह प्रवेश करती है और खलनायिका की तरह स्थापित होती है। मेरा तर्जुबा है कि आमतौर पर पत्नी दिन में खलनायिका और रात में नायिका की तरह पेश आती है।"[14]

'साथ' कहानी में लिव इन रिलेशनशिप के रिश्ते पर प्रकाश डाला है। जिसमें स्त्री-पुरूष, पति-पति जैसा जीवन जीते है, परंतु विवाह नहीं करते हैं। "सुनंदा बिस्तर के अलावा और कहीं, अभी उसकी पत्नी नहीं थी। पहली बीबी से तलाक लिये बिना यह मुमकिन नहीं था। पर तलाक की बात से उसे उस रकम की याद आ जाती थी, जो हरजाने के रूप में उसे अपनी पहली बीवी को देनी पड़ती। जब सुनंदा शादी के लिए कहती, वह वार्डरोब से निकल कर टाइयों का सेहरा सिर पर बांध लेता और सुनंदा पर चुम्बनों का धारावाहिक सिलसिला शुरू कर देता।"[15]

अपत्नी कहानी में लिला और प्रबोध का भी ऐसा ही जीवन था, जिसमें शादी की कोई जल्दी नहीं थी। "अभी तो पहली पत्नी से प्रबोध को तलाक भी नहीं मिला था। और फिर प्रबोध को दूसरी शादी की कोई जल्दी भी नहीं थी।"[16]

निष्कर्ष- आज भले ही ज्ञान, विज्ञान एवं तंत्रज्ञान के क्षेत्र में मनुष्य ने चाहे जितनी भी प्रगति की हो, परंतु स्त्री के प्रति पुरूष मानसिकता उतनी आधुनिक एवं प्रगल्भ नहीं हुई है, जो उसके जीवन और समस्याओं को सकारात्मक दृष्टि से देखे तथा उचित न्याय दे पाये। कहानीकार ममता जी स्त्री की इसी बुनियादी सोच को ध्यान में रखकर अपना लेखन करती रही हैं, जो कहीं-न-कहीं उनके अधिकार को मान्य करके समता स्थापित करने में कारगर साबित हो सके।

संदर्भ-

1.भारतीय नारी : दशा, दिशा - आशा रानी व्होरा, पृ. सं.07
2.प्राचीन भारत का इतिहास-वी.डी. महाजन, पृ. सं.338
3.ममता कालिया की कहानियाँ खण्ड-1(अपत्नी)-ममता कालिया, पृ.सं.49
4.वही, (पिछले दिनों का अंधेरा) ममता कालिया, पृ. सं.67
5.वही, (मंदिरा), पृ. सं.291
6.वही, (कवि मोहन), पृ. सं.301
7.वही, (बीमारी), पृ. सं.47
8.वही, (बिटिया), पृ. सं.376
9.ममता कालिया की कहानियाँ खण्ड-2 (चोट्टिन), ममता कालिया, पृ. सं.98
10.वही, (रोशनी की मार), पृ. सं.170
11.वही, (रोशनी की मार), पृ. सं.171
12.वही, (बोलनेवाली औरत), पृ. सं.131
13.वही, (अनुभव), पृ. सं.47
14.ममता कालिया की कहानियाँ खण्ड-1 (एक जीनियस की प्रेमकथा) ममता कालिया, पृ. सं.269
15.वही, (साथ), पृ. सं.69
16.वही, (अपत्नी), पृ. सं.49

सहयोगी प्राध्यापक , हिंदी विभाग
राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय,नागपुर

विकास बनाम विस्थापन : 'विस्थापित' उपन्यास के विशेष संदर्भ में

डॉ.अनघा ए.एस.

समकालीन साहित्य चर्चा में शायद सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। विस्थापन की समस्या। विस्थापन शब्द 'स्थापन' से निर्मित हैं, विस्थापन के समानार्थी शब्द के रूप में अंग्रेज़ी में diaspora, exodus, exile, displacement आदि शब्दों के रूप में निर्वासन, निष्कासन, उच्चासन, उच्छेदन, हटाई, उन्मूलन, व्यपरोपन, जलीवनती आदि शब्दों का प्रयोग होता है। विस्थापन का अर्थ है अपने जन्मस्थान और निवास स्थान छोड़कर एक नए स्थान की तरफ गमन करने की प्रक्रिया। बीसवीं सदी की एक दुखद घटना के रूप में, विस्थापन दुनिया भर में एक गहरी चिंता का विषय है। आज यह साहित्य का ज्वलंत विषय बन गया है। समकालीन हिंदी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में विस्थापन से संबंधित मुद्दों और समाज पर इसके विभिन्न रूपों के प्रभाव पर प्रकाश डाला है।

अमिता सिंह एक सुप्रसिद्ध समकालीन लेखिका हैं। अमिता सिंह द्वारा लिखित उपन्यास विस्थापित हिंदी साहित्य जगत में सर्वाधिक चर्चित है। अमिता सिंह ने अपने उपन्यास में पलायन के कई रूपों का चित्रण किया है। अपने उपन्यास में, लेखिका ने पलायन के मुद्दों का बहुत स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। उपन्यास उस सरकार और कॉर्पोरेट को बेनकाब करता है जो विकास के नाम पर आदिवासियों को उनकी ज़मीन से जबरन बेदखल कर देते हैं और उन्हें उनके शांतिपूर्ण जीवन से उखाडते हैं। विस्थापन कई रूपों में होता है।अपनी ही जमीन से विस्थापित होने पर लोग मानसिक रूप से टूटे हुए नजर आते हैं। जो भी सरकारी अधिकारी उनकी मदद करने की कोशिश करता है उसे राजनीतिक और शारीरिक रूप से रोक दिया जाता है। तब वह केवल असहाय होता है।उपरोक्त उपन्यास का पात्र आनंद इसका मिसाल है। विकास के नाम पर लोगों को बेदखल करने और उन्हें ऐसी जीवन स्थितियों में धकेलने की प्रथा, जिनमें वे कभी फिट नहीं हो सकते, आज भी जारी है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका इस दुखद स्थिति पर सवाल उठाता है।

बांध बनने से आदिवासियों की जमीन बाढ़ में डूब जायेगी. इसलिए उन्हें अपनी जमीन छोड़कर कहीं और जाना पड़ा। सरकार उन्हें पुनःर्वास का वादा देता है। लेकिन राजनेताओं की मदद से भूमाफिया आदिवासियों के ज़मीन हड़प लेता है और मनमाने दामों में बेच लेती है। कमल जैसे लोग आदिवासियों को इससे बचाने और उन्हें शांतिपूर्ण जीवन देने की कोशिश कर रहे हैं। वे राजनेताओं से टकराते हैं, लेकिन बहुत कम प्रभाव डालते हैं। अंततः सरकार आदिवासियों के जीवन को नारकीय बनाने की जिम्मेदारी उनके सिर पर डाल देती है। आनंद एक ईमानदार अधिकारी हैं, लेकिन उन्हें अक्सर आदिवासियों की दुर्दशा असहाय रूप से देखनी पड़ती है। इससे उसे बहुत दुख होता है। उपरोक्तउपन्यास में सरकार, भूमाफिया, पत्रकार, एनजीओ के नियत को रेखांकित करता है। आदिवासियों की विवशता का खुला बयान भी यहाँ दर्शाया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में विस्थापन के विभिन्न स्वरूप विद्यामान हैं। वे निम्नलिखित है:-

आदिवासियों को विस्थापित करना : जब आनंद को डी.एफ.ओ के रूप में नौकरी प्राप्त हुआ, वह बेहद खुशी के साथ नौकरी में भर्ती हुई। मगर डी.एफ.ओ की नौकरी उतना आसान नहीं रही। बाढ़ के कारण लोगों को अपनी जगह छोड़कर जाना पड़ता है। अगर नहीं जाए तो उनपर जबरदस्ती दिखाता है। सुधा इसके बारे में आनंद से बताती है- फिर वही शब्द व्यवस्थापित। चिढ़कर सुधा कहती, "बिलकुल गलत। लोग चीज़ें है क्या कि उन्हें, उठाकर यहाँ-वहाँ रख दिया? जैसे घर का सामान?"(1) यहाँ अधिकारीवर्ग विस्थापन के सिलसिले में लोगों को चीज़ें समझते हैं। उन्हें अपने मर्जी के अनुसार विस्थापित किया जाता है।

आदिवासी किसी की कठपुतली नहीं। वे भी मानव हैं। अपने जन्म भूमि से उन्हें जबरदस्ती हटाने पर वे प्रतिरोध करते हैं। बाहर खाली स्तंभ और एक चौखट ने जिसमें उड़ती चिड़ियों के पंख-सा निशाँ फँसा था, जमीन को जंगल ठहराया। एक विशाल कागज़ पर। सबके अधिकारों का अभिलेख। सचाई का सबसे बड़ा साक्ष्य। तिवारी बाबू

ने उस अदृश्य जंगल में उलझे स्याह पंख को अपनी उँगली के नीचे दबोचा। यहाँ जमीन का पट्टा नहीं दिया जा सकता था। यह औरत का नाजारत कब्ज़ा था और उन बाकी लोगों का भी। सरकारी जमीन की सबसे सुरक्षित स्वरूप पर। जंगल पर। बाकी लोग तो फिर भी ठीक थे। कम से कम नोटिस से डरते थे। चुप रहते थे। पर औरत की ढिठाई की हद नहीं थी। बेदखली नोटिस को ही जमीन पर कब्जे के अधिकार का प्रमाण बना बैठी थी। वह और उसका बेटा। दोनों ही परेशान करते थे।"(2)

यदि एक दिन उन्हें अपनी भूमि छोड़ने के लिए कहा जाएँ जहाँ वे इतने सालों से रह रहे हैं, तो वे इसे सहन नहीं कर सकते। ताकतवर जरूर सवाल उठाता है। यहाँ भी वही हुआ। इसलिए अधिकारियों का कहना है कि माँ-बेटे अहंकारी हैं और उन्हें सरकार का कोई डर नहीं है, जो इस बात पर अड़े हैं कि वे अपनी ज़मीन नहीं छोड़ेंगे। अतः इस स्थिति में भी सरकार विवशता-वश विस्थापित होनेवालों का दर्द न देखते हैं। उपरोक्त उपन्यास में अपने नियमों पर दृढ रहनेवाली सरकारी कर्मचारियों को देख सकते हैं।

विकास देश के लिए सबसे वांछनीय है। लेकिन इसके नाम पर आम लोगों को परेशान करना और डराना उचित नहीं। उपन्यास के नायक आनंद इस बात को समझता है। मगर वह सरकार कर्मचारी होने के कारण सरकारी नियमों को तोड़ नहीं सकता है। उसे सवाल किये बिना पालन करना पड़ता है। इसलिए आदिवासियों की आँसुओं और विनती को हमेशा अनदेखा करना पड़ता है। मगर घर से दखेलते ही बूढ़ी औरत अपनी जमीन का पट्टा पाने के लिए आनद के गेस्ट हौस के बरामदे में अपने सामग्रियों के साथ रहने आती है। पहले आनंद उसे वहाँ से हटाने का मार्ग देखता है। मगर वह औरत विवशतापूर्व चेहरा असहाय बनाता है। क्योंकि भूमि के नाम पर संघर्ष करने के कारण उसको एकलौता बेटा खोना पड़ा। सरकार ने उन्हें आतंकवादी करार दिया और जेल में डाल दिया। और एक बार जेल में डाल दिए तो कभी भी वह व्यक्तिबाहर नहीं आ सकता है। आनंद पता लगता है कि सरकार के खिलाफ नारे लगाने वाले और हड़ताल का नेतृत्व करनेवाले कई युवाओं को इसी तरह जेल में जाल दिया गया। इससे कई परिवार बर्बाद हो गए हैं, और उनके परिवार अपने बच्चों के वापसी का इंतज़ार कर रहे हैं। लेकिन उनकी सारी उम्मीदें धराशायी हो जाती हैं और उन्हें सरकार द्वारा निर्धारित नई जगह पर जाना पड़ता है। अतः 'विस्थापित' में आदिवासी लोगों की दुर्दशा और उनपर शासक वर्ग के अत्याचार का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया गया है।

मानसिक विस्थापन : जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर जबरन विस्थापित होता है तो यह व्यक्ति की मानसिकता को प्रभावित करता है। क्योंकि उनके मन नई जगह को स्वीकार नहीं कर पाता और सालों से गुज़री पुरानी जगह यादों उनके मन में बनी रहती है तो यह उनके दिमाग पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसे मानसिक विस्थापन कहता है। सुधा के पिताजी कॉलेज प्रोफेसर था। सेवानिवृत्ति के बाद भी यह कॉलेज के ही मकान में परिवार के साथ रहते थे। उनके पिताजी कॉलेज को खूब प्यार करता है। इसलिए हर दिन की तरह सेवानिवृत्त होने के बाद भी बच्चों को पढाने जाते थे। उनके सहकर्मचारियों को भी इससे कोई एकताज़ नहीं था। उन्हें भी उनके साथ काम करना अच्छा लगता था। मगर अचानक नए प्राध्यापक के आगमन से कॉलेज में कई परिवर्तन फटा-फट फुट निकला। इससे ज़्यादा नुक्सान सेवानिवृत्त अध्यापकों के घरों को हुआ। "... पर नये प्राचार्य का कहना था कॉलेज के मकान कॉलेज में काम करने से था। काम ख़त्म। अधिकार ख़त्म। यह पढ़ने की जगह है। पेंशनरों का अड्डा नहीं। नये प्राचार्य कम उम्र में प्राचार्य बन गए थे। सत्ता की गर्मी में उन्हें नहीं नज़र आते थे झुकते कंधे , धुंधलाते दिन और धुंधलाती दृष्टि, उजाड़ होते बगीचे की अकेली कुर्सी, बिना कुछ करे थकता समय और लम्बे होते दिनों में छोटी होती उम्र।"(3)

वास्तव में सेवानिवृत्ति के बाद अध्यापकों को कॉलेज के बाहर जाना चाहिए था। मगर किसी भी अध्यापक कॉलेज के काटेज छोड़कर बाहर नहीं गई। क्योंकि सालों से ऐसी परंपरा चली आ रही है। अचानक काटेज खाली करने की सूचना मिलने पर सब परेशान हो जाते हैं। सुधा के बाबुजी और माँ भी इस खबर से उदास हो जाते हैं।

'पर' माँ ने कहा, 'इसका कोई नियम होता है। ऐसे कैसे सबको बेदखल कर सकते हैं। कितने समय से लोग ऐसे रहते आ रहे हैं।"

"नियम नहीं है।" बाबुजी ने कहा, यह रिवाज़ है। लोग रिटायर करते और जहाँ रहते थे वहीं रहते जाते। कॉलेज

उनसे किराये की जगह कॉलेज कल्याण कोष में किराये से थोडा बहुत बढाकर राशि जमा कराता। उसकी रसीद एक दस्तूर को काबूल करती है अधिकारी का अभिलेख नहीं बनती।"

"इतने दिन जो जहाँ रहा उसका वहाँ कोई अधिकार नहीं।" माँ ने बहस की। "जो जगह उसकी कभी नहीं थी उस पर अधिकार कैसा?" "जगह पर अधिकार बसाने से होता है।" "बनाये हैं। बसाये नहीं। जो लोग इनमें रहे हैं उन्होंने बसाये हैं। उनके बिना यह सब खाली है। खालीपन पर कैसा अधिकार?"[4]

सुधा के बाबुजी और माँ आपस में बहस करते हैं। मगर उन्हें नए इलाके में स्थानांतरण करना पड़ता है। वे नए प्लाट में पुराने सामान भरकर पुरानी जगह जैसा दिखाने की कोशिश की जाती हैं, मगर तब भी उनके मन कॉलेज और पुराने कॉटेज के चारों ओर चक्कर काटते हैं। यहाँ मानसिक विस्थापन का ज्वलंत स्वरुप नज़र आती है।

दूसरी तरफ देखें तो आनंद शंकर के टूटी मानसिकता का चित्र देख सकते हैं। सुधा और अशोक बहुत अच्छे दोस्त रहे। वास्तव में दोनों एक दूसरे को चाहता है। लेकिन किसी ने खुलकर इस पर बात नहीं की। इसलिए दोनों अपने इश्क को दिल में छुपाकर दोस्ती निभाती रहती है। सुधा समाजशास्त्र में अनुसंधान करती है। दोनों अलग-अलग जगहों में रहने पर पूरी खबर मिलाकर एक दूसरे को चिट्ठी लिखती थी। अचानक कमल का आगमन और कमल के साथ सुधा का खुलमिलना आनंद को पसंद नहीं आता। 'अनुसंधान' नामक एन जी ओ का मुखिया, कमल आदि आदिवासियों को विस्थापन से बचाने का प्रयास करते हैं। वह प्रशासनिक अधिकारियों के खिलाफ लड़ाई करता है। सुधा भी उनके संघर्ष में भाग लेती है। आनंद उसे इससे रोकने की बहुत कोशिश करता है। लेकिन वह कमल के साथ संघर्ष का नेतृत्व करती है। "कमल की संस्था में काम करने के बाद? बाँध के विरोध के बाद?" वह मुस्करा दी, "नहीं। उस सबके साथ-साथ। सोचती रहूँगी। तुम भी सोचना।" उसके अंदर दर्द की हल्की दरार-सी फूटी। कमल। विरोध के लिए स्वतंत्र। सुधा के साथ किताब लिखने के लिए स्वतंत्र। सुधा के साथ समय गुज़ारने के लिए स्वतंत्र। उसे लगा रहा था बाँधा उसके चारों ओर कब का खड़ा हो गया है और उसका सबसे महत्वपूर्ण समय डूबकर न जाने कहाँ बह चुका है।"[5] यहाँ बाँध के विस्थापन से जूझ रहे आनंद के सामने कमल और सुधा के अचानक आ जाने के कारण वह मानसिक रूप से विस्थापित हो जाता है।

वैसे ही आनंद शंकर मानसिक विस्थापन का शिकार है। अपने घर और प्रियजनों को छोड़कर उन्हें कोसों दूर आकर नौकरी करना पड़ा। सरकारी कर्मचारी होने के कारण सरकार जहाँ भेजता है, वहाँ जाना पड़ता है। "...वह अकेला नहीं रहना चाहता था। अकेले रहने में बहुत सारे विरोध खड़े हो जाते। कंधे पर लटकी पोटली और मेज पर खिंचे नक़्शे। नक़्शे पर बनती बिगड़ती लकीरें और मिटाते गाँव घर। कहीं उमड़ती नदी, कहीं सूखता पानी। कोई उसे उसके अकेलेपन से बाहर निकालने के लिए नहीं था।"[6] मानसिक विस्थापन का शिकार होने के कारण आनंद शंकर अक्सर काम निपटाकर छुट्टी लेकर घर जाया करता है।

विकास योजनाओं से उत्पन्न विस्थापन : तीव्र आर्थिक विकास प्राप्त करने के लिए भारत ने औद्योगिक विकास योजनाएँ, सड़कें, खदानें, विद्युत शक्ति उत्पादन केंद्र और नये शहर आदि के निर्माण में भारी मात्रा में धन लगाए। ऐसी विकास योजनाओं के फल मिलने के लिए भूमि का बड़ी बादाद में अभिग्रहण ज़रूरी था जिसके कारण मानवराशि का विस्थापन संपन्न हो गया। भारत में विकास से होने वाले विस्थापन में प्रमुख कारण बाँध निर्माण से उत्पन्न विस्थापन से है। बांध निर्माण के कारण विस्थापित लोगों की संख्या दो से चार करोड़ के बीच है। बांध निर्माण से लोगों को कई प्रकार के मुसीबतों को झेलना पड़ा।

विकास योजनाओं के नाम पर बांध बनाने से उत्पन्न परेशानियों में पड़े आदिवासियों की हृदयस्पर्शी स्वरूप 'विस्थापित' उपन्यास में पाया जाता है। बांध बनाने का निर्णय लेते ही लोगों को विस्थापित करने का आदेश देते हैं। जो लोग अपनी ज़मीन छोड़कर नहीं जाते हैं, उन्हें धमकी से भगाने की कोशिश करेंगे। जो लोग सरकारी निर्णय के खिलाफ आंदोलन चलाते हैं, उन्हें गिरफ्तार करके जेल भेज देते हैं। 'विस्थापित' उपन्यास आदिवासियों की इन सभी परेशानियों को अंकित करने में सफल हुए हैं। "बस

स्टैंड पर उसे लोग दीखते। इक्के-दुक्के। समूह में। अपना समूचा जीवन चुपचाप एक छोटी पोटली में बाँध, कंधों पर लटकाये। निर्भाव। जीवन के अथक यात्री न कहीं से आना, न कहीं का जाना। क्षीण प्रवाह सा लोग का प्रस्थान। इनके पालायन का कोई मौसम नहीं। उसे अब दीख रहा था?"(7) यहाँ मुसीबतों में फंसे बिना परिवार के साथ सरकार द्वारा निर्धारित नई जगह की ओर लोग पलायन करता है। लोगों की इस तरह चुप-चाप पलायन देखकर आनंद शंकर को दम छुटने लगता है। लेकिन वह असहाय खड़ा होता है। "विस्थापित। रातोंरात गाँव और उनमें रहनेवाले लोगों के नाम डूब गए थे। खत्म हो गए थे। रातोंरात उनकी अस्मिता डूब गई थी। सबका अब एक ही नया नाम था। विस्थापित । एक सरल सामान्य समरूप नाम। जैसे मरने के बाद आदमी के इतने पर्याय कुछ निजी कुछ और सार्वजनिक उसे छोड़ देते हैं। उसकी पहचान सिर्फ शव के रूप में होती है।"(8) एक बार अपनी भूमि से बेदखल हो जाने पर कभी भी वहाँ लौट नहीं सकता। विकास हो जाए या नहीं, वह भूमि हमेशा के लिए सरकारी हिस्सा बन जाएगा।

विकास का नाम सुनते ही बाहर से लोग कम पैसों से आदिवासियों से ज़मीन खरीदता है। गरीब आदिवासी इन पूजीपतियों की बातों में फंस जाता है और उनके द्वारा दिए छोटे रकम में सबकुछ भूल जाता है। जब रकम ख़त्म हो जाता है, तभी अपनी गलती का एहसास होता है। सुशीला घर गुज़ारने के लिए दूसरों के घर में काम करने जाती है। वह अपनी छल में खो गई खेतों के बारे में कमल और सुधा से कहती है "खेत सबने बेच दिए थे। कालोनियों बनाने की तैयारी शुरू। जो छोटे किसान भी थे उन्होंने ज़मीन बेच दी थी। पानी के दाम। जितना पैसा मिला कब का ख़त्म हो चुका था। अब सब कर्ज में डूबे थे। सुशीला की माँ का पतला चिंतित चेहरा। सुशीला का बापू ज़मीन बेचकर शहर चला गया। वहाँ कुछ नहीं मिला। तब एक आदमी से पैसा लिया और बदले में उससे सुशीला की शादी तय कर दी।"(9) यहाँ विकास योजनाओं के पीछे छिपी अत्याचारों का पर्दाफ़ाश हुआ है।

निष्कर्ष : विकास मानवीय जीवन की मूलभूत ज़रुरत है। लेकिन आज की परिस्थिति में विकास एक ऐसा शब्द है जो विवादास्पद और आतंककारी स्वरूप धारण कर चूका है। विकास के नाम पर कई योजनाएँ बनती हैं लेकिन यह सब सरकार और सभ्य समाज के लिए है, जनजाति समूहों को अपने लाभ का माध्यम बनाने का एक षड्यंत्र मात्र है। 'विस्थापित' उपन्यास हमें आदिवासियों की विविध समस्याएँ जैसे बाँध-निर्माण और विस्थापन को उभारने के साथ राजनेताओं, पत्रकारों, एनजीओ तथा स्थानीय भूमाफियाओं के नियत को भी रेखांकित करता है। आदिवासियों की समस्या अपनी ज़मीन और घर के बदले घर और ज़मीन पाने की है साथ ही अपने जड़ों से जुड़े रहने की भी है। बदलते परिस्थितियों से विचलित आदिवासी समूह का फायदा तथाकथित सभ्य समाज उठाता है। अमिता शर्मा उपर्युक्त उपन्यास द्वारा आदिवासियों की दुर्दशा का करुणात्मक चित्र खींचता और सभ्य जनता की चालाकियों का पर्दा-फाश करने की कोशिश करती है।

संदर्भ संकेत

1. विस्थापित- अमिता शर्मा , वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, -पृ.सं. 20-21
2. वही, -पृ.सं. 23
3. वही, -पृ.सं. 50
4. वही, -पृ.सं. 78
5. वही, -पृ.सं.113
6. वही, -पृ.सं. 115
7. वही, -पृ.सं. 105
8.वही, -पृ.सं. 104
9. वही, -पृ.सं. 68

संदर्भ ग्रन्थसूची

1. विस्थापित-अमिता शर्मा , वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
2. समकालीन हिंदी उपन्यासों में विस्थापन- डॉ. रूबी एलसा जेकब, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2017
3. विस्थापन का साहित्यिक विमर्श- अचला पाण्डेय, लोक भारती प्रकाशन,नई दिल्ली, 2019
4. आदिवासी विकास से विस्थापन रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008

पीडीएफ, केरल विश्वविद्यालय
हिंदी विभाग, कार्यवट्टम कैंपस, तिरुवनंतपुरम

'अकेली आवाज़' उपन्यास में बाल मनोवैज्ञानिकता

डॉ.राजेष कुमार.आर.

बाल मनोविज्ञान, साहित्य की एक ऐसी शाखा है जो बच्चों के मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक विकास के गूढ़ रहस्यों को उजागर करती है। बाल मनोविज्ञान पर आधारित उपन्यास उन प्रक्रियाओं और कारकों को समझने का प्रयास करते हैं, जो बच्चों के व्यक्तित्व, बौद्धिक क्षमताओं, भाषा विकास, नैतिकता और आत्म-संवेदन को आकार देते हैं।इस विषय पर आधारित साहित्य हमें बच्चों की मासूम दुनिया, उनकी चिंताओं, आशाओं, आकांक्षाओं और उनके मानसिक संघर्षों से परिचित कराता है। हिंदी साहित्य में इस दिशा में प्रेमचंद, महादेवी वर्मा, सुधा मूर्ति, धर्मवीर भारती और सुभद्रा कुमारी चौहान जैसे रचनाकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन लेखकों ने अपनी रचनाओं में बच्चों के मनोविज्ञान को गहराई से समझने और चित्रित करने का प्रयास किया है, जिससे उनके साहित्य में बच्चों की दुनिया का सजीव चित्रण मिलता है।

नयी पीढ़ी के साहित्यकारों में श्री राजेंद्र अवस्थी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने उपन्यासों में बाल मनोविज्ञान के विभिन्न पहलुओं को विस्तार से उजागर किया है। उनकी रचनाएँ इस बात की साक्षी हैं कि बच्चों की मानसिक और भावनात्मक दुनिया कितनी जटिल और संवेदनशील हो सकती है। अवस्थी के उपन्यास न केवल बच्चों की समस्याओं और संघर्षों को सामने लाते हैं, बल्कि उनके समाधान की दिशा में भी महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। वस्तुतः राजेन्द्र अवस्थी नानामुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। एक ओर उन्हें पत्रकारिता में उल्लेखनीय यश प्राप्त हुआ तो दूसरी ओर उन्होंने विविध विषयक कृतियाँ प्रस्तुत कर हिन्दी साहित्य को समुन्नति भी दी है।

1976 में प्रकाशित राजेंद्र अवस्थी का उपन्यास 'अकेली आवाज़', बाल मनोविज्ञान की जटिलताओं को गहराई से उजागर करता है, जिसमें बंटू नामक एक बालक के माध्यम से बच्चों की मानसिकता के विविध पहलुओं का सजीव चित्रण किया गया है। यह उपन्यास न केवल बंटू के निजी संघर्षों और चिंताओं की कहानी है, बल्कि इसके माध्यम से बच्चों के मनोविज्ञान के व्यापक और सूक्ष्म मुद्दों पर भी प्रकाश डालता है। बंटू का चरित्र इस बात का उदाहरण है कि कैसे एक बच्चे की मानसिकता उसके पारिवारिक और सामाजिक परिवेश से प्रभावित होती है।

उपन्यास का मुख्य पात्र बंटू एक असामान्य मनोविज्ञान वाला किशोर है, जो एक उच्च परिवार के तथाकथित सभ्य माता-पिता की अकेली संतान है। वैभवपूर्ण लालन-पालन और माता-पिता का अटूट लाड-प्यार जहाँ उसमें अहंकार की भावना उत्पन्न करती है, वहीं उसका अकेलापन उसमें असुरक्षा की भावना भी भर देता है। अपने इकलौते बेटे की शिक्षा-दीक्षा के बारे में अशुतोष मुखर्जी के अपने विचार हैं। वे अपने बेटे को विद्यालय भेजना नहीं चाहते, क्योंकि उनके विचार में स्कूल में गंदे और खराब लड़के भी आते हैं। उनके साथ मिलकर बंटू की आदत बिगड़ जाएगी। माँ-बाप के इस मनोभाव का बड़ा बुरा प्रभाव बच्चे के मन पर पड़ता है। वह अपने को अन्य बच्चों से भिन्न और श्रेष्ठ मानने लगता है। अकेले रहकर वह असामाजिक बन गया। उसके बढ़ते हुए इस मनोभाव की ओर सबसे पहले नीता मिस ने इशारा किया। श्रीमती मुखर्जी को आगाह करते हुए नीता मिस ने कहा, 'आदमी एक सामाजिक प्राणी है। वह कभी अकेला नहीं रह सकता। अकेलापन उसे खा जाएगा। अकेले रहना केवल पशु जानते हैं। बंटू को यदि अकेले रहने की आदत लग गई तो वह कभी दोस्त नहीं बना सकेगा।'

एक अहंवादी लड़का होने के कारण बंटू में बड़ा आदमी बनने की महत्वाकांक्षा है। उसकी बाल सुलभ कल्पना में बड़ा आदमी बनने के लिए शिक्षा अनिवार्य नहीं है। डाकू मूरत सिंह ने बंदूक के बल पर लाखों रुपये कमाए और बड़ा आदमी बन गया। पुलिस उसे आखिर तक नहीं पकड़ सकी। बंटू मूरत सिंह का रास्ता अपनाने का निश्चय करता है। बाज़ारू सस्ती पुस्तकों का जो कुप्रभाव किशोरों पर पड़ सकता है, वह उस पर भी पड़ता है। नीता मिस के सदुपदेश का कोई फायदा नहीं होता। नीता मिस ने जब वह पुस्तक फाड़ डाली, तो बंटू गुस्से में आकर सामने पड़ा काँच का पेपरवेट उठाकर नीता मिस को मार देता है। इस घटना के बाद ही बंटू को किसी स्कूल में भर्ती करने के नीता मिस के सुझाव पर गंभीर विचार करने को मुखर्जी साहब प्रेरित होते हैं। बंटू को आदर्श विद्यालय में दाखिल करने का निश्चय होता है।

विद्यालय में आने के बाद भी बंटू की शरारतों में कुछ कमी नहीं होती। वह अपने को अन्य सभी विद्यार्थियों से श्रेष्ठ मानता है। मनोज को अपने कमरे में

रखने को वह तैयार नहीं होता। पहले दिन ही मनोज के गाल पर चांटा मारकर उसने अपनी असामाजिकता का परिचय दिया। भोजनालय में आशा की चोटी खींचकर अपनी असहिष्णुता प्रकट की। मनोज की मैत्रीपूर्ण बातें भी उसे असहनीय लगती हैं। नाश्ते के साथ चाय की माँग करके उसने अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने की चेष्टा की। उसमें बड़प्पन का भाव इतना अधिक है कि वह अपनी गलतियों के लिए किसी से माफी माँगने को तैयार नहीं। वह अपने को बुद्धिमान मानता था। कक्षा का दैनिक कार्यक्रम उसे असंगत लगता था। वह आदर्श विद्यालय में पढ़ना नहीं चाहता था। इसलिए उसने निश्चय किया कि वह एक न एक उत्पात मचाता ही रहेगा। विद्यालय के अधिकारी तंग आकर उसे विद्यालय से बाहर कर देंगे। लेकिन बंटू के चरित्र को सुधारने की समस्या को एक चुनौती के रूप में प्रिंसिपल और अध्यापकों ने स्वीकार किया। वे बड़े संयम और सावधानी से बंटू से पेश आते रहे।

आदर्श विद्यालय में अपराधी लड़कों को शारीरिक दंड देकर, डरा-धमकाकर दबाने की बजाय मनोवैज्ञानिक व्यवहार द्वारा ठीक रास्ते पर लाने का प्रयत्न किया जाता था। सबेरे चाय की जिद्द करने वाले बंटू को चाय दी जाती है, साथ ही चाय की आदत डालने के दोष समझाए जाते हैं। गलतियों के लिए माफी माँगने से इनकार करने वाले बंटू को माफ करके माफी माँगने की आदरणीयता समझाई जाती है। उसकी गलतियों का दोष उसपर न लगाकर, उसके माता-पिता पर लगाकर उसके अहंकार पर चोट की जाती है। बंटू के जन्मदिन की खुशी में भाग लेकर यह बात प्रकट की जाती है कि सारे विद्यार्थी और अध्यापक उसके साथी हैं। अपने बारे में स्वयं निर्णय लेने का अधिकार रखते हुए भी विद्यालय के नियमों का पालन करने के लिए वह बाध्य किया जाता है। ऐसे व्यवहार के कारण बंटू अनजाने ही परिवर्तित होता जाता है। दूसरों को नमस्ते करने की उसकी आदत पड़ जाती है। मनोज के अभाव में अकेलापन उसे अखरने लगता है। जिस मनोज को वह घृणा की दृष्टि से देखता था, वह उसका अभिन्न मित्र बन जाता है। जिस विद्यालय को वह छोड़ जाना चाहता था, उसमें पढ़ाई जारी रखने का निश्चय करता है।

बंटू समाज के उन लाखों बच्चों का प्रतीक है, जो अपनी अनोखी प्रतिभा को गलत रास्ते पर ले जाने को विवश कर दिए जाते हैं। ऐसे बच्चों को यदि उपचारात्मक शिक्षा दी जाए तो वे समाज और देश के स्तंभ बनने की सामर्थ्य रखते हैं। उपन्यासकार ने इसी तथ्य पर प्रकाश डाला है। कथावस्तु के योग्य पात्रों की सृष्टि में उपन्यासकार की सफलता निर्भर रहती है। प्रायः ऐसा होता है कि कथावस्तु भूल जाने पर भी कुछ पात्र पाठकों के मन में स्थायी स्थान पा जाते हैं। ऐसे पात्रों का चयन प्रतिभावान उपन्यासकारों द्वारा ही संपन्न होता है। 'अकेली आवाज़' के मुख्य पात्र बंटू का चरित्र हमें अपरिचित नहीं लगता। बंटू जैसे अनेक लड़कों को हम समाज में देख सकते हैं। संपन्न परिवार के कितने ही लड़के इस प्रकार माता-पिता की दंभ भरी धारणाओं के कारण बिगड़ जाते हैं। अपनी सारी चटपटाहट के बावजूद आदर्श विद्यालय में रहकर बंटू सुधर जाता है। मनोज एक आदर्श विद्यार्थी के रूप में चित्रित किया गया है। शायद बंटू के चरित्र निर्माण के लिए ऐसा किया गया है। उसके चित्रण में कुछ अतिरंजना होने पर भी अस्वाभाविकता नहीं है। आशा, गिरीश, मोहिनी जैसे लड़के-लड़कियाँ हमारे समाज के अभिन्न अंग हैं। अशुतोष मुखर्जी जैसे पिता और मोहन शर्मा जैसे प्रिंसिपल भी हमारे समाज में देखे जा सकते हैं। बंटू उपन्यास का केंद्रबिंदु है। उसके चरित्र विकास के लिए दूसरे सभी पात्र सहायक बनते हैं। प्रत्येक पात्र अपनी अलग विशेषता और व्यक्तित्व रखता है।

'अकेली आवाज़' में उपन्यासकार ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि बच्चे में कुछ जन्मजात संस्कार होते हैं, पर उनके चरित्र का अधिकांश भाग उस परिस्थिति का परिणाम है जिसमें उसका लालन-पालन होता है। बच्चे का संतुलित विकास समाज में अन्य बच्चों के साथ रहकर ही संभव है। बिगड़े बंटू को सुधारने के लिए आदर्श विद्यालय जैसी संस्थाओं की आज आवश्यकता है, जहाँ बच्चों को मनोवैज्ञानिक उपचार मिल सके। 'अकेली आवाज़' में भाषा सरल, बोधगम्य और पात्रानुकूल है। किसी भी रचना की शैली उसके लेखक की परिचायक होती है। राजेंद्र अवस्थी की शैली अपनी अलग विशेषता रखती है। यह उपन्यास रुचिकर है और अंत तक पाठकों की उत्सुकता बनाए रखता है। आजकल हत्याओं और अपराध कथाओं की अधिकता है। उससे भिन्न प्रकृति का यह उपन्यास पूर्ण रूप से स्वागत योग्य है।

'अकेली आवाज़' की रचना में श्री राजेंद्र अवस्थी ने आधुनिक शैक्षिक मनोविज्ञान का काफी सहारा लिया है। उन्होंने इसमें स्थापित किया है कि प्रत्येक बच्चे में कुछ नैसर्गिक प्रतिभा होती है, जो सही वातावरण और मार्गदर्शन पाकर चमक उठती है। बच्चों के चरित्र का अधिकांश भाग उस परिस्थिति का परिणाम होता है जिसमें उनका पालन-पोषण होता है। बच्चों का संतुलित विकास समाज में अन्य

बच्चों के साथ रहकर ही संभव है। माता-पिता के अटूट लाड-प्यार से बिगड़े हुए बंटू जैसे लड़कों को सुधारने के लिए आदर्श विद्यालय जैसी संस्थाओं की आवश्यकता है, जहाँ बच्चों को मनोवैज्ञानिक उपचार मिल सके और उनका चतुर्दिक विकास हो सके।

विद्यालय का कार्यक्रम ऐसा बनाया गया था कि समय का पूरा उपयोग हो सके, साथ ही विद्यार्थियों के मानसिक उल्लास का संपूर्ण ध्यान रखा जाता था। सुबह निश्चित समय पर घंटी बजने पर सब विद्यार्थियों को उठना पड़ता है। सारे विद्यार्थियों को सुबह की दौड़ में भाग लेना पड़ता है। कवायद के बाद नाश्ता दिया जाता है। उसके बाद सब विद्यार्थी अपने-अपने कमरे में चले जाते हैं और स्कूल शुरू होने तक पढ़ते हैं। शाम को खेल-कूद का अवसर मिलता है। शाम की प्रार्थना के बाद शाम का भोजन दिया जाता है। इसके बाद दस बजे तक पढ़ाई का समय होता है। दस बजे को बिजली बुझाकर सब सोने लगते हैं। इस प्रकार पूरा समय विभक्तरहता है। इस व्यवस्था से विद्यार्थियों में समय के सदुपयोग की आदत डाली जाती है। विद्यालय की व्यवस्था में विद्यार्थियों का सक्रिय भाग रहता है ।

अध्यापक केवल मार्गदर्शक की भूमिका में होते हैं। प्रत्येक कक्षा का एक कप्तान होता है। कप्तान का पद अत्यधिक उत्तरदायित्वपूर्ण होता है। कक्षा का अनुशासन बनाए रखने में कप्तान की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। कक्षा में प्रत्येक विद्यार्थी की जगह कप्तान ही निर्धारित करता है। कप्तान का कहना न मानना अनुशासन भंग करना माना जाता है। कक्षा में नए आने वाले विद्यार्थी का परिचय देकर उसका स्वागत करने का दायित्व भी कप्तान का होता है। शिक्षक के आने से पहले विद्यार्थियों की कापियाँ देखकर व्यवस्थित करने का काम भी कप्तान करता है।

विद्यालय के शासन में विद्यार्थी परिषद की भूमिका प्रमुख होती है। सप्ताह में एक बार परिषद की बैठक होती है, जिसमें सारी बातें तय की जाती हैं। उनके अनुसार सप्ताह भर का काम चलता है। अनुशासन भंग करने वाले उपद्रवी लड़कों को सजा दी जाती है। विद्यालय के एक बड़े हॉल में परिषद की बैठक होती है। सारे लड़के और लड़कियाँ वहाँ आकर बैठते हैं। पीछे की सीटों पर प्रिंसिपल और अन्य शिक्षक बैठते हैं। विद्यालय के नियमों के अनुसार अलग-अलग कक्षा के कप्तानों में से विद्यार्थी परिषद के लिए पाँच सदस्य चुने जाते हैं। ये जूरी या न्यायाधीश कहलाते हैं। उनमें एक प्रधान न्यायाधीश होता है। ये पाँचों मिलकर विद्यालय के अनुशासन को बनाए रखने का प्रयास करते हैं।

प्रत्येक कक्षा का कप्तान अपनी कक्षा की साप्ताहिक रिपोर्ट परिषद के सामने प्रस्तुत करता है। विद्यालय के सराहनीय कार्यों की प्रशंसा की जाती है और अपराधियों को सजा दी जाती है। गौरवपूर्ण मामलों में परिषद के जूरी प्रिंसिपल का मार्गदर्शन स्वीकार करते हैं। वहाँ किसी के प्रति पक्षपात या वैर-विरोध नहीं रहता। ऐसी गणतंत्र प्रणाली होने के कारण अध्यापकों और विद्यार्थियों के बीच का संबंध सौहार्दपूर्ण रहता है। विद्यार्थियों को स्वायत्त शासन में प्रशिक्षण मिलता है, उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान निभाने का अभ्यास मिलता है, पारस्परिक आदर करने की शिक्षा मिलती है, और निष्पक्ष भाव से उत्तरदायित्व निभाने का मनोबल प्राप्त होता है। संक्षेप में विद्यार्थी के संपूर्ण विकास की पर्याप्त सुविधा आदर्श विद्यालय में रहती है। वहाँ उँच-नीच का भेदभाव नहीं होता और सारे विद्यार्थी मिल-जुलकर भाईचारे के साथ रहते हैं।

राजेंद्र अवस्थी का 'अकेली आवाज़' बाल मनोविज्ञान के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में अवस्थी जी ने यह स्पष्ट किया है कि उच्चता का अनुठा दर्प मनुष्य को कितनी समस्याओं के बीच खड़ा कर देता है। बच्चों में कुछ जन्मजात संस्कार होते है किंतु उनके चरित्रों का अधिकांश विकास उस परिस्थिति का परिणाम होता है। इसका सुंदर चित्रण अवस्थी जी ने किया है। बंटू का चरित्र और उसके अनुभव बाल मनोविज्ञानिकता के गहरे और जटिल मुद्दों को सामने लाते हैं। राजेंद्र अवस्थी ने अपने इस उपन्यास के माध्यम से बालकों के मानसिक संघर्षों और उनकी आंतरिक दुनिया को उजागर कर, पाठकों को एक संवेदनशील और सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास न केवल बंटू के अनुभवों की कहानी है, बल्कि यह एक गहन अध्ययन है, जो बाल मनोविज्ञान के विभिन्न पहलुओं को उजागर करता है और हमें बच्चों की मानसिकता को बेहतर तरीके से समझने के लिए प्रेरित करता है।

असोसियेट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग
महात्मा गांधी कॉलेज,
तिरुवनंतपुरम

‘धरती धन न अपना’ में चित्रित दलितों का त्रासद जीवन - एक विश्लेषण

डॉ.बिंदु.एम.जी

वर्ण व्यवस्था की संस्कृति को मज़बूती से पकडकर आगे बढनेवाला देश है भारत। हमारा देश ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र चातूर्वर्ण्य व्यवस्थिति का केन्द्र है। इस व्यवस्था में सबसे निचले तबके के शूद्र को दलित नाम से पुकारे जाते हैं। मानवोचित गरिमा से एकदम निष्कासित ये वर्ग जानवरों से भी बदत्तर जीवन बिता रहे है। दलित शब्द का अर्थ है- जिसका दलन किया गया हो। जो दरिद्र हो, जो दुखी हो, जिसे उच्च वर्ग के लोग उठने न देते हो वे ही दलित है। वे अछूत शब्द से भी पुकारे जाते है।अतः दलित शव्द का सामाजिक संदर्भ में अर्थ होगा कि वह जाति समुदाय जिसका अन्यायपूर्वक सवर्ण उच्च जातियों द्वारा दमन किया गया हो, रौंदा गया हो ।

हिन्दू धर्मग्रन्थों में यह तथ्य मिलता है कि जिन्हें ब्राह्मण ग्रन्थों में दलित या शूद्र घोषित किया गया है वे वास्तव में क्षत्रिय है। ब्राह्मण - क्षत्रिय युद्ध के अवसर पर जो क्षत्रिय आसानी से ब्राह्मण की अधीनता स्वीकार करते थे उनको कम दण्ड देकर गृह कार्य में लगाये जाते थे। और जिन्होंने अधिक कठिन संघर्ष किया था उनको गन्दगी साफ करने के कार्य में लगाकर अछूत की सज्ञा दी गई। वेदग्रन्थों में ऋग्वेद को छोडकर कहीं भी शूद्र शब्द का प्रयोग ही नहीं है। इससे पता चलता है कि ऋग्वेद का पुरुषसूक्तब्राह्मणों द्वारा बाद में छल से जोडा गया है। शूद्र को उसी स्तर में रखना उनके लिए अनिवार्य था। इसके लिए उन्होंने सामाजिक व्यवस्था या नियम का निर्माण किया। जिसको बनाने का कार्य एक ब्राह्मण बुद्धिजीवी नेता मनु को दिया गया। मनु द्वारा समाज में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था लागु की गई जिसमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र शामिल है। इसमें शूद्र को अंतिम श्रेणी में रखा गया और उनके लिए अलग कानून बनाए गये। जिसको बनाने का कार्य एक ब्राह्मण बुद्धिजीवी नेता मनु को दिया गया। मनु द्वारा समाज में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था लागु की गई जिसमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र शामिल है। इसमें शूद्र को अंतिम श्रेणी में रखा गया और उनके लिए अलग कानून बनाए गये। ये इस प्रकार थे :

1 वर्ण व्यवस्था में शूद्रों का स्थान अंतिम होगा

2 शूद्र अपवित्र या तीनों वर्णों से नीचे है। अतः उनको सुनने के लिए कोई कर्मकाण्ड या वेदमंत्र नहीं होगा।

3 चिकित्सक किसी भी शूद्र की चिकित्सा न करेगा।

4 शूद्रों का वध करने पर ब्राह्मण को दण्ड नहीं दिया जाएगा। 5 किसी भी शूद्र को विद्याध्ययन या पढने का अधिकार नहीं होगा। 6 किसी भी शूद्र को संपत्ती रखने का अधिकार नहीं होगा। यदि वह इसका उल्लंखन करता है तो उसकी संपत्ती ब्राह्मणों द्वारा छीन ली जाएगी। 7 शूद्र कहीं से भी सम्मान पाने का अधिकारी नहीं होगा। 8 शूद्र जन्म से दास होगा और मरने तक दास बनकर ही रहेगा

मनु द्वारा लिखे गये ये कानून मनुस्मृति, मनुवाद या ब्राह्मणवाद नाम से जाने जाते है।

अतः वेदकाल से लेकर मनुष्य कहे जानेवाले ये वर्ग समस्त मानवोचित गरिमा एवं अधिकार से वंचित थे। वर्ण, जाति, धर्म, वर्ग, संप्रदाय,के नाम पर सामाजिक प्रताडना का शिकार होकर वे आज भी जी रहे हैं। भारत में सर्वप्रथम अंग्रेज़ी सरकार ने दलितों को डिप्रसड क्लास घोषित किया था।अंग्रेज़ों ने इन लोगों के लिए कुछ सुविधाएँ प्रदान की थीं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण था शिक्षा पाने का अधिकार। यहीं से लेकर पहली बार दलित शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। शिक्षित पहली बार अपने अधिकारों के बारे में सचेत हो उठे। जब से वे अपनी माँग को समाज के सामने रखना शुरू की तब से दलित अस्मिताबोध एवं दलित जागरण की शुरूआत होती है। पहले ये उत्पीडित वर्ग अपनी व्यथा एवं पीडा को एक दूसरे से कहना सुनना शुरू किया लेकिन बाद में वे अपनी व्यथा कथा को लेखनी के माध्यम से समाज के सामने रखने लगे। दलित लेखन दलितों की शक्ति और उर्जा थी जिसके ज़रिए शोषणकारी अधिकारी वर्ग के खिलाफ खडे होने को वे सक्षम हो गये। यह साहित्य असल में दलितों का हथियार था। अपनी जीवन

व्यथा का मार्मिक वर्णन दलित खुद करते रहे। इसके बारे में दलितों के सशक्त लेखक मोहनदास नैमिशराय कहते है "दूर बैठकर कल्पना के अधार पर दलितों की पीडा के वर्णन को दलित साहित्य कहना न्यायसंगत नहीं है। यह बिलकुल ऐसे ही होगा जैसे दलित शोषितों को दूर से ही फेंककर रोटी-दान करना, जबकी दलित वर्ग के लेखकों ने जो लिखा उनकी रचनाओं में अथाह पीडा रही।आक्रोश का ज्वार बार बार उफनता रहा, इसलिए कि वे सामाजिक विषमता के भुक्तभोगी थे।"[3]

हिन्दी के विख्यात साहित्यकार श्री जगदीश चन्द्र का उपन्यास धरती धन न अपना नैमिशराय के उक्त कथन केलिए एक अपवाद ही है। कारण जगदीशचन्द्र उच्चवर्गीय परिवार का अंग था। वे पंजाब के घोडेवाहा गाँव के थे। उनके घर का मुख्य व्यवसाय खेती और पशुपालन था। घोडेवाहा गाँव का पडोसी गाँव रलहन के निवासुयों के साथ जगदीश चन्द्र का निकटतम संपर्क था।यह गाँव जतिभेद की भयावहता का केन्द्र था। घर में रोकटोक होते हुए भी जगदीश हमेशा दलित बच्चों के साथ खेलते थे और उनके घर से खाना भी खाते थे। बचपन काल में एक बार उन्होंने अपनी नानी से पूछा एक ही ज़मीन में कुओं से निकलनेवाला पानी, एक से खेतों से उपजनेवाला अनाज और साग-सब्जी इस बस्ती में पहुँचने और पकने के बाद भिन्न और सवर्ण जातियों के खाने-पीने और स्पर्श के अयोग्य क्यों हो जाते है। जगदीश चन्द्र नामक छोटे बालक के इस कथन में सवर्णों के खिलाफ आक्रोश है। बडे हो जाने पर उन्होंने धरती धन न अपना उपन्यास लिखा जिसमें यह आक्रोश और अधिक मुखरित हो उठे है। यह उपन्यास सन 1972 में प्रकाश में आया । इस उपन्यास में जगदीशजी ने पंजाब के दोआबा क्षेत्र के दलितों के त्रासदपूर्ण जीवन को चित्रित किया है। चमादडी नामक बस्ती में चमार जाति के लोग रहते है। इसलिए यह गाँव मुख्य गाँव से बहिष्कृत है। उपन्यास का मुख्य पात्र काली तथा उसके वर्ग के लोग वहाँ के ज़मींदारों ठाकूरलोगों और साहुकारों के क्रूर व्यवहार निरंतर सहते रहते हैं।

धरती धन न अपना उपन्यास का आरंभ छे साल बाद कानपूर से अपने गाँव लौटकर आनेवाले काली से होता है। गाँव में काली का एकमात्र संबन्धी उसकी चाची प्रतापी ही थी। असके माता पिता और चाचा का देहांत हो चुका था। काली को उसके चाचा चाची ने ही पालपोसकर बडा किया था। काली के पिता गाँव के बडा पहलवान था।लेकिन असमय में ही उसकी मृत्यु हो जाती है। उसकी माँ भी प्लेग की बीमारी से चल बसी थी। हैजे के कारण चाचा मर जाते है। भूख और गरीबी से पीडित काली कानपूर भाग जाते है। "चमादडी में बीमारी का प्रकोप रहता है। काली की माँ को प्लेग खा गई, उसका बाप भी असमय काल-कवलित हुआ। चाचा को हैजे ने खा लिया। गरीबी का आलम वह है कि छः साल पहले काली दो दिन से भूखा प्यासा ,फटेहाल घर से भागकर कानपूर पहुँचा था।"[4] छः वर्ष के कानपूर वास के कारण काली और गाँववालों के बीच एक दूरी सी आ गई। छः साल कानपूर में मज़दूरी कर कुछ पैसा कमाकर ही काली गाँव लौट आया है। इसलिए चमार होने पर भी लोगों के बीच में उसका कुछ नाम तो था। लोग अब उसको बाबु कालिदास पुकारते है।

गाँव के उच्चवर्ग के लोग यहाँ के चमारलोगों को बिना किसी कारण के गाली देते थे मारते पीटते भी थे। उपन्यास की शुरु में चौधरी हरनामसिंह अपने खेत नष्ट करने के संदेह में जीतु की पिटाई करता है। "चमादडी में ऐसी घटना कोई नई बात नहीं थी। ऐसे अक्सर होता रहता था। जब किसी चौधरी का फसल चोरी हो जाती, बरबाद कर दी जाती चमार चौधरी के काम पर न जाता या फिर किसी चौधरी के अन्दर ज़मीन की मलकियत का एक एहसास ज़ोर पकड लेता तो वह अपनी साख बनाने और चौधर मनवाने के लिए इस मुहल्ले में चला आता।"[5]

चमार स्त्रियों की स्थिति भी बहुत दुखदाई है। पुरुषों से बढकर वे लैंगिक शोषण के भी शिकार हैं। सवर्ण लोग इनको अछूत कहते हैं किन्तु अपनी कामपिपासा की पूर्ति के लिए वे इनके शरीर को छूते है इनका उपभोग करते है। "चमादडी की औरतों के कपडे मैले कुचले, फटे पुराने है। बच्चे नंग- धडंग नाक सुडसुडाते है चमार परिवारों में बच्चे काफी संख्या में पैदा होते हैं। लेकिन बचते बहुत कम है। बबे हुकमा तेरह बच्चे को जन्म देती है।लेकिन बचा एक ही।"[6]

मंगु चमार चौधरी हरनामसिंह का गुलाम बना हुआ है जबकी उसकी बहिन ज्ञानो चौधरियों के अन्याय का विरोध करती है।यह देखकर काली के मन में ज्ञानो के प्रति

आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। गाँव में महाजन लोगों को छोडकर बाकी सभी लोगों के मकान पक्के नहीं थे। विशेष रूप से चमादडी लोगों के घर की स्थिति बहुत शोचनीय थी। काली अपने घर को पक्का बनाना चाहता है। लेकिन गाँव के सवर्ण लोग उसके इस कार्य को रोकने का प्रयत्न करते है। छः वर्ष तक का शहरी जीवन काली के व्यक्तित्व में इतना अधिक परिवर्तन कर डाला है कि अब वह खुलेआम अपने अधिकार की बात करने को सक्षम हो गया है। इसलिए लोग थोडा ध्यान देकर उससे बातें करते है। किन्तु जाति को भूलकर उसके साथ संपर्क रखने को कोई तैयार नहीं थे। उसके साथ वे अब भी अछूत का सा व्यवहार करते है। चमादडी गाँव के सभी लोग इस भेदभाव को छेलते हैं। चमार लोगों के साथ ठाकूरलोग अपनी मनमानी करते है। उनको पीटते है हाथपाँव तुडवा देते है , गाली देकर हमेशा उनको संबोधित करते है। चमारों की स्त्रियों के साथ बलात्कार आम बात ही था। इस अन्याय के खिलाफ मुँह खोलने को ये बेचारे भयभीत थे।

उनका जीवनयापन ठाकूरों की दया से ही आगे बढता था। काली जब अपना नया मकान बनाना चाहता है इसके लिए वह छज्जु शाह का सलाह लेता है। छज्जु काली को इस तथ्य से अवगत करा देता है कि जिन घरों में दलित लोग रह रहे है वह जगह गाँव की साझी जगह है। शामलात है और इन घरों पर दलितों का मौरूसी अधिकार ही है। अर्थात जब तक उसके खानदान का कोई व्यक्ति उस घर में रहता है तब तक वहाँ उसका अधिकार भी होगा। “कालिदास जिस ज़मीन की तुम बात कर रहे हो वह ज़मीन भी तुम्हारी नहीं है। वह शामलात है। जब तक तू या तेरे वारिस इस गाँव में रहेंगे, ज़मीन का यह टुकडा सिहायश के लिए तुम्हारा है। बाद में उसका मालिक गाँव होगा। वह तेरी मालिकयती ज़मीन नहीं है, मौरूसी ज़मीन है।”[7]

काली का अपना मकान पक्का करने का इरादा गाँव के सामन्ती व्यवस्था के लिए विध्वंसात्मक कार्रवाई है। साथ ही काली का चौधरियों के सामने आत्मसम्मान के साथ पेश करना भी उनके दमनात्मक रवैये के लिए चुनौती ही है। ज्ञानो ,जीतु जैसे कुछ इने गिने प्रबुद्ध युवक युवतियों को छोडकर चमादडी के अधिकांश लोग काली से ईर्ष्या करते हैं। विशेषकर ज्ञानो का भाई मंगु उससे उलझ ही रहता है। लेकिन धीरे धीरे गाँव में काली की प्रतिष्ठा बढती है। और साथ ही ज्ञानो और काली में प्रेमसंबन्ध भी विकसित होता है।

चाची की अचानक बीमारी और मृत्यु काली को दर्दनाक लगती थी। उसके मकान पक्का करने का सपना भी पूरा नहीं हो पाता है।मात्र इतना ही नहीं उसकी कमाई के पैसे और चाची के बनाए गए गहने रुपये सब चाची की मृत्यु के बाद शोक जताने आई कोई पडोसिन ले उडाती है। उसकी सारी संपत्ती नष्ट हुई।

जीवनयापन के लिए वह घास खोदने का काम करता है और दूसरों के घर में मज़दूरी करने लगता है। गाँव में बाढ का आ जाना कहानी का अगला मोड है। गाँव का सारा पानी सबसे पहले चमादडी गाँव में ही घुस आता है। कारण गाँव के चारों ओर पानी को रोकने के लिए न कोई प्रबन्ध अभी तक किया है। पूरी चमादडी पानी से भर गया। इस प्राकृतिक आपदा का सामना चौधरी और चमार मिलकर करते हैं। लेकिन चौधरियों के खेतों को बचाने के लिए दलित बेगार भी दिहाडी न मिलने पर चौधरी चमार संघर्ष शुरु होता है। और चमारों का सामाजिक बहिष्कार किया जाता है। चमार लोग भी हडताल करते है। पादरी लोग उनकी मदद करने को आते है। इस शर्त पर कि उन्हें इसके लिए ईशू के शरण में आना होगा। कामरेड लोग भी दलितों की सहायता करने का बहाना करते है। वे भाषण देते हैं जलसे की घोषणा करते है। समझौते का प्रयत्न कहीं से नहीं हुआ। पन्द्रह दिन के बाद चमारों के बच्चे भूख से बिलबिलाने लगे। जीवन को आगे बढाना चमारों के लिए कठिन हो गया। आखिर चौधरियों के शर्त को मान लेने को वे विवश हो जाते है।

काली अब अकेला है। उसके और ज्ञानो के प्रेम के त्रासदपूर्ण अंत को उपन्यास में मार्मिकता से चित्रित किया है। ज्ञानो गर्भवती हो जाती है। किन्तु काली के साथ उसकी शादी समाज को स्वीकार्य नहीं है। इस प्रेमसंबन्ध के कारण गाँव के निवासी काली के दुश्मन हो जाते है। लल्लु पहलवान उसको नौकरी से निकाल देते है। काली पडोस के कसबे में नौकरी करने लगता है। वह ज्ञानो को लेकर भाग जाना चाहता है। दोनों आपस में मिलना जुलना बन्द नहीं करते।वे दोनों एक साथ जीने का निर्णय ले लेते हैं। किन्तु ज्ञानो को उसकी माँ और भाई दोनों मिलकर जहर देकर मार डालते हैं। काली गाँव से भाग जाता है। काली के कामयाब होकर घर लौटने के सुखद घटना को

लेकर उपन्यास का आरंभ होता है। किन्तु उपन्यास के अंत में अत्यन्त विषम परिस्थितियों में अपने गाँव से जान बचाकर भागने को मज़बूर काली को दिखाया है।

श्री जगदीश चन्द्र ने धरती धन न अपना उपन्यास में आद्यन्त दलितों के त्रासदपूर्ण जीवन की संवेदनात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की है। गाँव के चमार जाति के लोगों को चमार कुत्ता, अबोध, मूर्ख, नालायक जैसे संबोधनों से अपमानित कर चैन का अनुभव करनेवाले सवर्ण मानसिकता के पागलपन का असली रूप उपन्यास में है। छुआछूत के अपमान को न बरदाश्त कर पाने के कारण ये लोग अन्य धर्मवाले लोगों के षड्यन्त्र में पडकर उनके धर्म को अपनाते थे। परन्तु उसके चमार होने को कोई भूल नहीं जाते थे। "नन्दसिंह पहले सिख बना लेकिन ऊँची जाति के किसी सिख ने उसे मुँह नहीं लगाया। चमारों की बिरादरी से निकलकर चूडों भंगियों में जा मिलेगा।"[8]

असल में धरती धन न अपना उपन्यास जातिवादी विभीषिका का यथार्थ रूप पाठकवर्ग के सामने रखता है। छुआछूत, जातिवाद, स्त्री यौन शोषण जैसी गंभीर समस्या के साथ साथ उच्चवर्ग के अमानवीय हरकतों का खुलासा उपन्यास में है।

श्री जगदीश चन्द्र ने कहा है - गाँव में चमार होना ही सबसे बडा पाप है। घोर लांछन है। दो कौडी का मालिक काश्तकार अपने चमार को छटी का दूध पिला देता है। मुझे चमार शब्द से ही नफरत है। मुझे कोई चमार कहे तो गुस्सा आ जाता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. साक्षात्कार- प्रोफसर कालीचरण सनेही पृष्ठ सं 12
2. हिन्दी दलित साहित्य और चेतना-डॉ. ललित कौशल पृ-20 (3)
3. धरती धन न अपना-जगदीश चन्द्र-पृ-13)
4. वही पृ-21-5
5. वही पृ-154
6. वही- पृ- 35- 7
7. वही - पृ -35

सह आचार्या, हिन्दी वीभाग

महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम

प्रश्नोत्तरी उत्तर

1. जैनेंद्र किशोर

2. डायरी

3. बनारसी दास चतुर्वेदी

4. इंशा अल्ला खाँ

5. यामिनी भाषा

6. जगन्नाथदास रत्नाकर

7. कामता प्रसाद गुरु

8. सूरदास

9. सैयद इब्राहिम

10. विष्णु स्वामी

11. तुर्की

12. पतिराम या मनीराम

13. डॉ. भगवतशरण उपाध्याय

14. आचार्य रामचंद्र शुक्ल

15. जानकी प्रसाद

16. पुष्पा भारती

17. महात्मागाँधी

18. डॉ.पी.वी.विजयन

19. अमरकांत

20. पंडितराज जगन्नाथ

स्त्री विमर्श से प्रभावित 'हंस' की कहानियाँ

शरण्या.एस.एस

"कहानी शिल्प और कथ्य के जैविक सायूज्य में घटित होनेवाली समग्र सत्ता है।" कहानियाँ लोगों से जुडने का एक जरिया भी है। जैसे मानव सभ्यता के प्रादुर्भाव से लेकर आज तक कहानियों में मनुष्य की गहरी अभिरु चि रही हैं। बचपन में वह अपने दादा-दादी या नाना-नानी की गोद में बैठकर कहानियाँ सुनता था। युवावस्था में वह पहले नाटकों, लोक कलाओं (नौटंकी, तमाशा, आल्हा, कठपुतली आदि) से अपना मनोरंजन करता आ रहा था, तो वृद्धावस्था में वह धर्म ग्रंथों की कहानियों से मनोरंजन के साथ-साथ धर्मलाभ भी करता आ रहा था।" हिन्दी कहानी साहित्य में कई प्रख्यात प्रतिभा संपन्न लेखकों एवं लेखिकाओं है। इसके कारण ही ये श्रेष्ठ कहानियाँ देश की सीमाओं को पार कर विश्व साहित्य का परिचायक बन गया।

'हंस' पत्रिका के अंतर्गत लेखक-लेखिकाओं ने गंभीर स्वर में नारी पात्रों का चित्रण किया गया है। 'हंस' की दृष्टि का सबसे अहम एवं कीमती पहलू व्यावहारिता की दृष्टि से समस्याओं का मूल्यांकन करना है। 'हंस' के लेखकों ने अपनी कहानियों के माध्यम से सेवा, त्याग, सहनशीलता, सहानुभूति, संवेदनशीलता, वीरता, धैर्य, साहस जैसे गुणों से संपन्न नारी के विविध रूप दिखा रहा है। नारी का हर एक रूप मनभावना होता है। वह अनेक गुणों से संपन्न भी हैं। शक्तिके रूप में नारी माँ, बहन, पत्नी, पुत्री तथा कई विभिन्न भूमिकाओं निभाती हैं। कहानियों के जरिए नारी जीवन की विविध रूपों एवं विषमताओं को अपनी अनोखी दृष्टि से अनेक लेखकों ने अपने मौलिक चिंतन के साथ विश्लेषित किया है। नारी के लिए लेखन अपना वैकल्पिक संसार रचने का माध्यम तो है ही, साथ ही अपने होने के अहसास को बनाए रखने का जरिया भी है। कहता है कि लिखने से लिखना ही नहीं, जीना भी आ जाएगा। इस दृष्टि में देखें तो नारी लेखन या नारी विमर्श "टुकडों और पलों में विभक्त कर दिए जाने की पीडा भोगती स्त्री की सर्जनात्मक व्याकुलता का परिणाम है, जो पल-पल और कण-कण को जोडकर अपने अस्तित्व/स्त्रीत्व को साबत और समग्रता में पा लेना चाहती है।" इस प्रकार नारी होने की विडंबना के बीच मानवीय महत्व के आत्म सम्मान और स्वतंत्रता के सपने को समझा और अर्जित किया जा सकता है। नारी लेखन में स्वाभिमान और स्वाधीनता के मानवीय महत्व है।

हिन्दी कहानी में प्रगति और निरंतरता की असंगत प्रवृत्ति आज भी क्रियाशील है। हर नई पीढ़ी रचना में किसी न किसी तरह नयापन लाने की कोशिश लेखके करते हैं। लेकिन रचनाओं की पृष्ठभूमि भी बदलती है। इस बदलती पृष्ठभूमि में समाज की समग्रता या सामाजिक व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि खंडित रूप में आता या ला जाता है। खंडित का अर्थ है - स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि। स्त्री विमर्श में स्त्री की दशा दिखाई जाती है। लेकिन दशा को बदलने की चेतना या प्रेरणा का अभाव रहता है। स्त्री विमर्श जैसे खंडित विमर्श के बावजूद ही हिन्दी कहानी इस दौर में आगे बढ़ी है, और समृद्ध हुई है। पुराने में और आज में कई लेखक तथा लेखिकाओं की कहानियाँ स्त्री विमर्श से प्रभावित है। सभी कहानियों में नारी जीवन या स्त्री-पुरुष आकर्षण के प्रसंग चित्रित या वर्णित किया है। जैसे रचनात्मकता में एक विशेषता आ जाती है कि जीवन और समाज के यथार्थ की विविधता नहीं आ पाती। रचनात्मकता की कलात्मकता यह भी है कि नारी जीवन की समस्याओं के चित्रण में विविधता है और इसी माध्यम से कई जगह परिवार और उससे भी आगे बढ़कर समाज की भी झाँकी मिल जाती है।

पहली ही कहानी सन् 2018 में 'हंस' पत्रिका में प्रकाशित प्रतिभा जी की 'स्ट्रेंज़र्स' को देखें। इस कहानी में माँ-बेटी के मासूम रिश्ते के बारे में कहा गया है। माँ-बेटी के रिश्ते में सही और गलत का बहुत ही सजीव चित्रण किया गया है। आठ साल की कृति बोस कभी-कभी अपनी अम्मी को देखती रहती है और सोचती है कि मम्मी को क्या हो गया है? पहले मम्मी ऐसी तो बिलकुल नहीं थी। अचानक उसको क्या हुआ? इसे ज़्यादा इसको समझ भी नहीं सकती। कृति को सिर्फ यह समझता है कि

मम्मी का मूड ठीक है तो वह दुनिया के सबसे अच्छी मम्मी होती, अगर मूड खराब है तो पढ़ने को या वर्कबुक में लिखने को कहा जाएगा। कभी-कभी कृति को मम्मी के व्यवहार से लगता है कि उसकी मम्मी पराई है। कृति कहती है - "असली माँ एक खोल के नीचे है। किसी तरह की जादुई शक्ति प्राप्त कर मैं उस खोल को तोड़ना चाहती हूँ, तो मुझे मेरी मम्मी को मिलती है। वही पुरानीवाली मम्मी, बिदास मम्मी, मस्त मम्मी नीचे से निकल आएगी जो बस कृति को हग करेगी, ढेर-ढेर किस करेगी .... हाथ पकडकर उड़ान पर निकल पडेगी, माँ-बेटी दोनों बस सारे ब्रह्मांड को बेच लेंगी, आकाश का विस्तार उनकी मुट्ठी में होगा और सारी प्राण वायु उनकी सांसों में होगी।" खेलने के लिए बाहर बाहर जाते समय भी मम्मी मेरे साथ होती है। कभी-कभी मुझे लगता है कि मम्मी को दो आँखें नहीं थर्ड आई भी हैं, क्योंकि सभी समय वह चारों ओर नज़र रखती है। उसके बाद उन्होंने सवाल पूछना भी शुरू करती है। कृति के लिए मम्मी ही सबसे पक्की सहेली, इसलिए वह उसके साथ सारी बातें खुलकर शेयर करती थी। अब माँ-बेटी के बीच बहुत अधिक धुआँ और गुबार हैं, वह कृति को अच्छा नहीं लगता। मम्मी ने मुझसे कहा कि मैं मम्मी की इजाजत के बिना कहीं नहीं जाउँ, लेकिन एक दिन खेल के बाद मैं. ऋषभ भैया के घर गया। यह जानकर उन्होंने मुझे बहुत डांटा। मम्मी ने कहा कि "कितनी बार समझाया है पार्क में सहेलियों के साथ खेलने के बाद सीधे अपने घर आओगी किसी के घर नहीं जाओगी ..... तुम्हें यह ज़रा सी बात समझ क्यों नहीं आती।" यह बात मम्मी हमेशा कहती है। लेकिन आज ऋषभ भैया को मना नहीं किया जा सकता था। परंतु मम्मी की गुस्सा से बचने का रास्ता है मैथ वर्कबुक करना। मम्मी रात को मेरे पास आई और प्यार से सिर पर हाथ फेरा, गाल पर किसी किया एवं हग भी किया। उस समय वे पहलीवाली मम्मी थे। यहाँ ये लडकी की बाल्यावस्था की मानसिक और शारीरिक हरकत, जिसे लेखिका मनोयोग और कलात्मक ढंग से प्रस्तुत कर रही है। बाल्यावस्था से गुज़र रही कृति बोस और उसकी माँ नंदिता बोस के विचार बहुत अलग होते हैं। उनके विचार कभी एक जैसे नहीं होंगे। अपनी बेटी की सुरक्षा को लेकर तनाव में रही माँ को भी वह समझ नहीं क्योंकि वह बच्ची हैं।

दूसरी कहानी है सन् 2010 में पुन्नीसिंह जी द्वारा लिखित 'पंचनामा'। पुन्नीसिंह के 'पंचनामा' कहानी में नायिका सोमी, वह नारी है, अपने पति के मृत्यु के बाद उसके लिए न्याय की लड़ाई लड़ती है। विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी सोमी के दृढ़ संकल्प के परिणामस्वरूप उसे न्याय मिलता है। सोमी का पति रघु जंगल में मरा हुआ पाया गया था। लेकिन पुलिस तो उस केस को जल्दी से पंचनामे तैयार करने में लगी रहती या उस केस में किसी को फंसाने की खोज में लगी होती है। लेकिन सोमी इसके लिए तैयार नहीं थी और असली दोषियों को सामने लाने की कोशिश की। थानेदार को यह तात्पर्य नहीं थे और इससे बचने के लिए उसे भुगतान करने को तैयार भी किया। किंतु सोमी ने नोटों को थानेदार के मुँह पर दे मारे और साथ बोली - "मेये आदमी की लास को चालन कर बैरी। .... गोरा गूजर को नाम लिख वा के मरवाबे में ... और सुन तै ने जो इतनो नाय किओ तो मैं लास लैके कचैरी पे जाउँगी और गोरा के संग तरोअ नाम बताउँगी।"

तीसरी कहानी सन् 2013 में कौशल पँवार के रितु है। कौशल पँवार जी की कहानी है रितु। इस कहानी की नायिका भी रितु है। रितु कॉलेज जानेवाली थी। उसको पढ़ने की बहुत शौक थी। उसकी सपना थी अच्छे तरके से पढ़ना, वह कुछ करना चाहती थी। वह देखने में बहुत खूबसूरत थी लेकिन वह बहुत कम बोलती थी और उसकी मुस्कान भी सुंदर थी। उसके माता-पिता ने पढ़ाई के दौरान ही उसकी शादी तय करने का फैसला किया। माता-पिता ने सिर्फ अपनी ज़िम्मेदारियों के बारे में ही सोचा, बल्कि उसकी पढ़ाई के बारे में उन्हें कोई चिंता नहीं थी। फिर उसकी शादी हो गई। उसके साथ उसकी पढ़ाई भी बंद हो गयी। शादी के बाद उसका अपने दोस्तों से कोई रिश्ता नहीं रखा। जैसे कई वर्ष बीत गए। एक दिन रितु अपनी एक सहेली से मिली। दोस्त को रितु में बाहरी और अंदरूनी तौर पर कई बदलाव नज़र आए। उसने ये बात रितु को बताई। जैसे आँखों के नीचे काले गड्ढे, नकली हँसी आदि। तब रितु ने कहा - "अब मैं पुरानी हो गई हूँ। मेरी शादी को तीन साल होनेवाले हैं। क्या तुम सोचती हो मैं वैसी ही वैसी रहूँगी? शादी के बाद ऐसा ही होता है।" लेकिन उसकी आँखों से उसका दर्द मुझे समझा आया और मैं समझता था कि अपनी जिंदगी से वह खुश है,

उसको कोई शिकायत किसी से नहीं है। परंतु मुझे एहसास हुआ कि वह हर रिश्ते से दूर रहना चाहती थी, पता नहीं क्यूँ? अब वह रितु ने नहीं थी सिर्फ एक पत्नी थी, जो पति धर्म निभा रही थी। समय बीत गया। एक दिन सुना था कि रितु ने आत्महत्या की। पता था कि ससुरालवालों की मार से तंग आकार ही उसने आत्महत्या कर ली। मौत को लेकर कई तरह की अफवाहें सुनीं। लेकिन सच्चाई के बारे में किसी को कुछ नहीं जानता था। रितु के मौत को लेकर सिर्फ दुःख उनका माता-पिता और भाई को थे। 'रितु' उसने हर चले आए धर्म को निभाया था-एक बेटी होने का धर्म और एक पत्नी होने का धर्म। कभी किसी से कोई शिकायत नहीं की। माँ-बाप अपने फर्ज से मुक्त होना चाहते थे और भाई अपनी ज़िम्मेदारी निभाकर अपना घर बसाना चाहता था।

'हंस' पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित ये तीन कहानियाँ समाज में तीन प्रकार की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करने में सक्षम थीं। जैसे स्त्री विमर्श से प्रभावित कई कहानियाँ 'हंस' पत्रिका द्वारा प्रकाशित है। ये सभी कहानियाँ समाज का प्रतिबिंब भी हैं। प्रत्येक कहानीकार ने इस बात का बहुत ध्यान रखा है कि स्त्री-विमर्श कहानियों की विषय-वस्तु अलग-अलग हो। ये अलगापन सभी स्त्री विमर्श कहानियों में देखे जा सकते हैं।

सहायक ग्रंथ सूची

1. हंस पत्रिका, 2010 हगस्त
2. स्त्री विमर्श और समकालीन साहित्यिक संदर्भः प्रतिभा मुदलिया
3. हंस पत्रिका, 2018 अक्तूबर
4. हंस पत्रिका, 2013 अगस्त
5. हंस पत्रिका, 2012 सितंबर

शोध निदेशक

डॉ. गायत्री एन
असोसियेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम।
शोध छात्र, हिन्दी विभाग, महात्मा गाँधी कॉलेज,
तिरुवनन्तपुरम।
केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनंतपुरम

डॉ. देवेंद्र कुमार धोदावत की कविताएँ

1. **मचलता हूँ मैं**

थक जाता हूँ जहाँ,
वही सो जाता हूँ मैं ....
जमीं बिछौना, आसमां -
ओढ़कर सो जाता हूँ मैं....
बेघर नहीं, सर पर-
घर उठाकर चलता हूँ मैं ....
शौक है रात में,
तारे देखने का,
खुले में सोने को
मचलता हूँ मैं...

2. **बरगद के नीचे**

घर से निकल कर
जब जब बरगद के नीचे गया हूँ....
लौटने पर ऐसा लगा
जैसे हर बार कुछ नया हूँ...
ताजा नई हवा मिली अमरता की...
लटकती हुई जड़ों की कथा की...
खुश था काम आई पत्तियों, डाली...
किसी का भोजन बना, किसी की थाली...
वर्षों से खड़ा है अदब से, अथक...
खुली है आज भी जेहन की हर रग...
रोजनामचा लिखता है रोज छाया में...
इंतजार पंछी का रात भर जिसने कहा आया मैं
तने के पास की तनिक मिट्टी उठा लेता हूँ
मानकर उसे मूरत तिलक लगा देता हूँ...
घर से निकल कर....

अतिरिक्त मुख्य सचिव
राज्यपाल, केरल

सफदर हाशमी के नुक्कड़ नाटकों में सामाजिक चेतना

डॉ.सुजित.एन.तंपी

शोध सार : लोकनाटक मानव के प्राचीनतम मनोरंजन का साधन है। नुक्कड़ नाटक की परंपरा भारत की लोकनाट्य परंपरा से जुड़ी हुई है। नुक्कड़ नाटक की प्रेरणा सामाजिक चेतना से संबंधित है। समाज की विसंगतियों की ओर उँगली उठाकर उसमें परिवर्तन लाने की कोशिश करना उसका लक्ष्य रहा है। भारत के नुक्कड़ नाटककारों में सफदर हाशमी का स्थान अद्वितीय है। राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, नैतिक आदि सभी सामाजिक विषयों का चित्रण उनके नुक्कड़ नाटकों में हुआ है ।

बीज शब्द : समाजिक चेतना, सांप्रदायिकता, पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, प्रजातंत्र

विषय प्रवेश : हमारे समय में कई प्राचीन और परंपरागत सामाजिक पद्धतियां सैकड़ों हज़ारों वर्षों से चलती आ रही हैं। पुरुषसत्तात्मक भारतीय समाज में नारी का स्थान अब भी शोचनीय है। बडे-बडे पूँजीपतियों के उँगलियों के दिशा-निर्देशन में चलने वाले भ्रष्टराजनीतिज्ञ जनता को उल्लू बनाते हैं।देश के रक्षक ही देश के भक्षक बन गए हैं।देश में भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया। न्याय व्यवस्था भी खराब है। आधुनिक युगों में भी भारतीय गांवों में अपेक्षित परिवर्तन नहीं आया है। हमारे समाज की इन जटिलताओं का पर्दाफाश करने में समकालीन नुक्कड़ नाटक सक्षम है। सफदर हाशमी के नुक्कड़ नाटक इसका ज्वलंत उदाहरण है।

नुक्कड़ नाटक : नुक्कड़ नाटक भारत के लोकनाटक परंपरा का परिवर्तित रूप है। लोकनाटक से रूपगत साम्य रखते हुए भी नुक्कड़ नाटक अपनी स्वतंत्र पहचान के साथ अवतरित हुए हैं। नुक्कड़ नाटक और लोकनाटक का बुनियादी अंतर यह है कि नुक्कड़ नाटक एक सामाजिक राजनीतिक चेतना और सरोकार को एक आंदोलन के रूप में लेकर चला है जबकि लोकनाट्य परंपरा जनता के मनोरंजन के लिए रही है। भारत में उन्नीस सौ अस्सी के समय में आम जनता को उनके अधिकारों के प्रति सचेत करने, शोषण धर्मी व्यवस्था का विरोध करने, सामाजिक परिवर्तन एवं जनाक्रोश को अभिव्यक्ति देने हेतु नाटक प्रेक्षागृहों से निकल कर सड़क पर आ गया और जन भावनाओं को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम बन गया। इसका उद्देश्य ही दर्शक को जागृत करना है और बदलाव के लिए संघर्ष करने का आह्वान आम-आदमी को देना है। नुक्कड़ नाटक के बारे में प्रसिद्ध रंगकर्मी सफदर हाशमी कहते हैं कि नुक्कड़ नाटक आधुनिक समाज के अंतर्विरोधों और उनकी मुखालफत का माध्यम है। नुक्कड़ नाटक भले ही एक समय एक राजनैतिक आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया गया हो, परंतु अब वह बढते-बढते राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं तक पहुँच गया है।

सामाजिक चेतना : मानव एक सामाजिक प्राणी है। इसलिए समाज में घटित होने वाली घटनाओं का प्रभाव व्यक्ति में भी होता है। नाटककार समाज में जो घटनाएँ घटित होती हैं उसकी प्रतिक्रिया के रूप में ही नाटक का सृजन करते हैं।उनकी चेतना में समाज को सुधारने की चेष्टा प्रबल होती है ।

नुक्कड़ नाटकों में सामाजिक चेतना : पराधीनता के समय में भारतवासियों ने एक आदर्श समाज का सपना देखा है। लेकिन स्वतंत्रता के बाद वह सपना, सपना ही रह गया। समाज में पूँजीवादी व्यवस्था की सारी बुराईयाँ नज़र आने लगीं। देश के दिशा-निर्देशकों ने स्वार्थता से जनता को पंगु बना दिया। वर्तमान समाज को कई विसंगतियों से जूझना पडा है। नुक्कड़ नाटककारों ने इन विसंगतियों को अपने नाटक का विषय बनाया। सफदर हाशमी के नुक्कड़ नाटकों में चित्रित कुछ सामाजिक विषयों को यहां लिया है।

सफदर हाशमी के नुक्कड़ नाटकों में सामाजिक चेतना

i) **सांप्रदायिकताः** सांप्रदायिकता की समस्याएं किसी न-किसी रूप में समाज में बनी रहती है। डिवाइड एंड रूल ब्रिटिश राज का तंत्र था।लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के

बाद हमारे नेता इस तंत्र को विविध रूपों में खूब प्रयोग करके प्रजातंत्र को आगे बढाता है ।इसके अलावा पूँजीपतियों ने भी इस तंत्र का प्रयोग करते हैं। निरीह जनता धर्म के नाम पर आपस में लडते हैं और मारे जाते हैं। हमारी शासन व्यवस्था उनकी मदद करती है ।

'हत्यारे' में इस तरह का चित्रण मिलता है। तालों का शहर है अलीगढ़। तालों का काम यहाँ के गरीब दस्तकारों का पुश्तैनी काम है। इनके रहते ही बड़ी-बड़ी फेक्टरियों में बने ताले खरीदने को कोई तैयार नहीं है। इसलिए वहाँ फैक्टरी के पूँजीपति के षड्यंत्र से अलिगढ में हिंदू और मुसलमानों का फसाद कराता है। दंगे के बाद वहाँ के ताले बनाने के छोटे घरेलू कारखाने हमेशा के लिए बंद हो जाते हैं। दंगे में घर जलते रहते हैं, शहरों में कर्फ्यू महीनों लगे रहते हैं, मासूम देशीजाओं की इज़्ज़त लुटती रही है, मांओं की गोदें और बापों के अरमान उजडते रहते हैं। दो जून की रोटी के लिए आप ही की तरह दिन-रात मेहनत करनेवाला इन्सान, ख्वाह वह किसी भी धर्म का हो, आपका दुश्मन नहीं हो सकता।अमीरों की इस दुनिया में गरीबों की न जान महफूज है न ईमान !....

भारत में करोड़पतियों की संख्या में वृद्धि हो रही है और गरीबों का भी ! हमारे सत्ताधारियों को पूँजीपतियों के विशेषज्ञ ने नए-नए उपदेश देते हैं जैसे महानगरीय जनता की Public Utility Services पर निर्भरता को खत्म करना चाहिए ।...फिर Market forces की natural growth रूकी हुई है, private sector को growth की opportunities नहीं मिलने के कारण हमारी economy backward हो रही है ...यानी हमने आपकी सुविधा के लिए बसों में भीड़ कम करने के लिए D.T.C की service को improve करने के लिए किरायों में वृद्धि का फैसला किया है! इस तरह के नए इकणोमिक्स पोलिसियाँ यहां लागू हो रहे हैं। सच तो यह है कि हमारे कण्ट्री गो आगे जनता रिमैन पीछे! (डी. टी.सी.की धांधली)

दिन-प्रतिदिन देश की प्रगति और विकास के लिए नई-नई योजनाएँ बनाई जाती हैं। इसके लिए बडी-बड़ी मीटिंग होती हैं, बहसें की जाती हैं और बड़े-बड़े आश्वासन दिए जाते हैं। किंतु इसका परिणाम कोरी लफ्फाजी और कागजी कार्रवाई के अतिरिक्त और कुछ नहीं निकलता है।

ii) हमारी न्यायव्यवस्था के संदर्भ में नारी जीवनः

भारत में सार्वजनिक सेवाओं का गठन जनता की सहायता और हित के लिए किया गया है। किन्तु यहाँ भी भ्रष्टाचार, अंधेरगर्दी और धांधली अपनी चरमसीमा तक व्याप्त है। पुलिस का अर्थ वह सेवा है जो जनता के जान-माल की सुरक्षा करे और उसकी सहायता करे। लेकिन भारत में अंग्रेज़ी शासनकाल से ही पुलिस रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार का पर्याय रही है। जनता पुलिस से डरती है, घृणा करती है, उससे दूर रहना चाहती है। पुलिस का रक्षक का नहीं बल्कि भक्षक का रूप बना हुआ है । भारतीय शासन प्रणाली के अन्य विभागों की भांति न्याय-प्रणाली भी विकृतियों, विसंगतियों और भ्रष्टाचार से परिपूर्ण है। विधि तो 'टेक्निकल' है। आज न्याय महँगा ही नहीं बल्कि विलंबकारी भी है । आज के विकृत एवं खंडित न्याय व्यवस्था के संदर्भ में नारी का जीवन असुरक्षित है ।

कल रात शहर के एक बदनाम इलाके में, एक जवान लड़की को, सड़क के किनारे बेहोश पाया गया। शक किया जाता है कि उसकी इज़्ज़त पर हमला किया गया था। लड़की को अस्पताल में दाखिल करा दिया गया है।छान-बीन ज़ारी है। पुलिस ने खबर दी। कल रात तीन गुंडों ने यह काम किया था लेकिन पुलिस उनसे घूँस लेता है और उनके बारे में कुछ भी खबर नहीं देता है। जज के सामने मामला आ गया। पूछ-ताछ हुई। आखिर जज ने फैसला सुनाया। काफी सबूत न होने के कारण मामला रद्द किया जाता है। 'पुलीस चरित्रम' नुक्कड नाटक के फेरीवाला गीत गाता है - "सडक पर मज़दूर का खून बह रहा है।/ रात के अंधेरे में बस्तियों को लूटा जा रहा है,/दिन-रात, रात -दिन/लफंगे, बदमाश, कभी वर्दी में, कभी बिना वर्दीके/ औरत की इज़्ज़त पर हाथ डाल रहे हैं।/उसे अपने पैरों तले रौंद रहे हैं।/और कोर्ट कचहरियों में एक अजब सन्नाटा है।/

यह कैसी व्यवस्था है, कैसा कानून है।/कैसा न्याय है यह,/ कैसा समाज है, कैसा देश है यह!/ सभी अफसर उनके /जो सब कुछ करने को तैयार,/सभी दफ्तर उनके।।/ कानूनी किताबें उनकी /कोर्ट कचहरी भी उनके /जज और जेलर भी उनके /पुलिस और गुंडे तक उनके।।/ सभी अफसर उनके .../भेड़िये झपटें औरत पर/वो उसकी इज़्ज़त को लूटे/वो उसको सड़कों पर नोचें /कर दे टुकड़े टुकड़े हज़ार।।/सभी अवसर उनके ....(पुलीस चरित्रम)

iii) भारतीय गांवों में शिक्षा : आज़ादी का अमृतवर्ष हमने मनाया लेकिन अब भी भारतीय गाँवों में शिक्षा की प्रगति उतना सराहनीय नहीं है। कहा जाता है कि भारत में जमींदारी व्यवस्था खतम हुई है। लेकिन आज भी गाँवों शासन कुछ लोगों के कब्जे में ही है। 'पढना -लिखना सीखो' नुक्कड़ नाटक में इसका चित्रण मिलता है।

नाटक के मास्टर जब गाँव वालों से बच्चों को पढ़ने भेजने को कहते हैं, तब एक गाँववाला पूछता है "मास्टर बाबू पढ-लिख कर इस गाँव वालों को क्या करना है? मेरी मानियो तो आप चौधरी के यहाँ चले जाओ।इस गांव में सिर्फ चौधरी खानदान के लोग ही पढ़ते हैं।" दूसरे व्यक्तिकहता है "ना बाबू,नन्हीं सी जान, दिन भर चौधरी के खेतों में खटे हैं। और कहीं चौधरी को पता चल गई तो चमडी उधेड देंगे।" पढाई के फल पर भी गांववालों को निराशा है। रघु कहता है उन्होंने सकूलक के लिए बच्चों को इकट्ठा करना शुरू किया। पर उस गाँव का कोई भी आदमी पढ़ने को तैयार ही न हुआ। उनका सारा ध्यान किसी तरह दो जून रोटी जुटाने में लगा रहता। जब पेट की भूख आते नोचती है तो दिमाग के बारे में कौन सोचता। "दूसरे गाँववाले कहता है पर पढ लिख कर भी हमें रहना तो मजूरी ही है। गाँव में खेतों के, शहर में फैक्ट्री के!" गाँव की लड़कियों की अवस्था गोगुल के शब्दों में उभर आता है। क्या कह रहे हो मास्टर हमारे यहाँ लड़कियों यूँ न निकला हैं बाहर। क्या करेगी पढ- लिख कर? संभालना तो इसे चुल्हा ही है।... यहाँ गाँव में भी तो औरतें हमारे साथ खेतों में काम करती हैं। तब उसकी बेटी चंदा पढ़ने की आशा प्रकट करती हुई बोलती है नहीं बाबा मैं पढूँगी तब गोगुल कहता है 'चुप हरामजादी'। वहाँ घर में तेरी माँ अकेली मर-खप रही है। चलकर उसका हाथ बंटा।

उपसंहार : नुक्कड़ नाटक सामाजिक अभिव्यक्तिका सबसे महत्वपूर्ण साधन है। आम जनता से जुड़े हुए विषयों को लेकर आम जनता की भाषा में इन नाटकों का सृजन होता है। समकालीन नुक्कड़ नाटकों में भारतीय समाज की बीमारियों का उल्लेख हुआ है। सफदर हाशमी ने नुक्कड़ नाटकों में भारतीय समाज में जिंदा भोगने वाले आम जनता के जीवन की त्रासदियों का खूब चित्रण मार्मिक ढंग से किया है। अतः उनका नुक्कड़ नाटक दरअसल एक प्रकार का सांस्कृतिक आंदोलन था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सफदर हाशमी- चौक चौक पर गली गली में,सफदर हाशमी मेमोरियल ट्रस्ट,नई दिल्ली,2006.
2. डॉ.आर. शशिधरन- आधुनिक हिंदी नाटकों में सामाजिक व्यंग्य,जवाहर पुस्तकालय,मथुरा(उ.प्र), प्र.सं. 2009.
3. डॉ. जयदेव तनेजा- हिंदी नाटक आज- कल, तक्षशिला प्रकाशन,नई दिल्ली, प्र .सं.2010.
4. डॉ.आर. शशिधरन - समकालीन रंग नाटक,हिंदी विभाग,कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, केरल, प्र.सं.2008.
5. डॉ जशवंतभाई डी. पंड्या - समकालीन हिंदी नाटक, ज्ञान प्रकाशन कानपुर, प्र.सं 2015.
6. डॉ.स्वामी प्यारा कौडा - हिन्दी नाटक और रंगमंच,के. एल .पचौरी प्रकाशन,गाजियाबाद, प्र.सं. 2012.
7. बद्रीनारायण- लोक संस्कृति और इतिहास, लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद, प्र.सं.2014.

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
यूनिवर्सिटि कालेज
तिरुवनंतपुरम, केरल

रेत समाधि : नारी जीवन की बृहद गाथा

डॉ. गायत्री.एन

समकालीन हिन्दी महिला कथाकारों में गीतांजलि श्री का उल्लेखनीय स्थान है। स्त्री-विमर्श, किन्नर-विमर्श, साम्प्रदायिक समस्या, आतंकवाद की समस्या, व्यक्तिविशेष की समस्या-इन सारी समस्याओं को लेखिका ने अपने कथा-साहित्य में स्थान दिया ह। सन् 2018 ई. में प्रकाशित तथा अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार से सम्मानित भारतीय भाषा की 'रेत-समाधि' भाव तथा शिल्प दोनों स्तर पर नवीन प्रयोगात्मक उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखिका ने चंदा और अनवर की एक ऐसी प्रेम कहानी को केंद्र में रखा है जो भारत-पाक बँटवारे के कारण अधूरी रह जाती है। इसके साथ ही रोज़ी किन्नर के माध्यम से किन्नर-विमर्श को वाणी दी गयी है।

यह चंदा और अनवर की अमर प्रेम कहानी है। बँटवारे से पहले पाकिस्तान में चंद्रप्रभा देवी की युवावस्था का प्रेम एक मुसलमान नवयुवक से हो जाता है। फिर दोनों अपने परिवार-जनों की सहमति से विवाह कर लेते हैं। चंद्रप्रभा चंदा बन जाती है। अनवर और चंदा नया दांपत्य जीवन शुरू करते हैं। तभी बंटवारा सामने आ जाता है। चंदा अनवर से बिछड़ जाती है और भारत विषम परिस्थितियों में धकेल दी जाती है। फिर न अनवर का चंदा से और न चंदा का अनवर से कोई मेल होता है। चंदा अस्सी साल की हो जाती है। इस बीच भारत में एक अच्छे खाते-पीते परिवार में चंद्रप्रभा की शादी होती है, बच्चे होते हैं, पति की मृत्यु हो जाती है और उसके बाद चंदा यानि चंद्रप्रभा को अनवर की याद आने लगती है। वह पाकिस्तान पहुँचकर अनवर को ढूँढ निकालती है। उससे मिलती है। लेकिन नाटकीय परिस्थितियों में गोली लगने से चंदा की मृत्यु हो जाती है। कहानी के पात्र केवल चंदा और अनवर नहीं है ,उनमें चंदा अर्थात चंद्रप्रभा देवी का परिवार भी है। बेटे बहू हैं। बेटी है। बेटी लिव इन रिलेशनशिप में रहती है। चंदा के जीवन में अस्सी साल की उम्र में अब तक दबी हुई इच्छाएँ प्रकट होने लगती हैं। उपन्यासकार ने विस्तार से बेटी के साथ माँ को खुश रहते हुए दिखाया है। लिव-इन-रिलेशनशिप का माहौल व्यक्तिको किस प्रकार से बंधनों से मुक्तकर देता है ,दर्शाया है। उपन्यास बताता है कि शादी-ब्याह ,बच्चे और परिवार होते हुए भी एक स्त्री किस प्रकार अपने भीतर एक खोखलापन महसूस कर सकती है।

रेत-समाधि उपन्यास तीन खण्डों में विभाजित है- पीठ, धूप, हद-सरहद। पीठ खंड में अस्सी वर्षीय अम्मा की अपने पति की मौत के बाद सभी से पीठ करने का उल्लेख है- एक कोने में सिमटी गठरी की तरह पड़ी हुई। 'पीठ' करने का अर्थ है सभी चीज़ों से उदासीन हो जाना। अस्सी वर्षीय अम्मा चन्द्रप्रभा देवी हमेशा पीठ दरवाजे की तरफ़ किए पड़ी रहती। अम्मा के पति जो सरकारी अफ़सर थे- उनकी मौत हो चुकी है। अब उनके परिवार में आला अफ़सर बेटा, बहू, लेखिका बेटी और दो पोते हैं। बेटा आला अधिकारी है और लेखिका बेटी स्वतंत्र है, बाहर रहती है- शहर में उसका अपना फ्लैट, अपनी व्यवस्था है। उपन्यास में माँ-बेटे और बेटी-माँ का बहुत ख़ास रिश्ता उभरता है। इस सन्दर्भ में लेखिका गीतांजलि श्री खुद कहती हैं- "उपन्यास का पहला अंश है पीठ - उसमें माँ और बेटे के रिश्ते का वृत्तान्त है। बेटे के घर में ही माँ रहती है और फिर पूरा परिवार उसमें जुड़ता है। माँ और बेटी का शायद बिलकुल अलग इसलिए दिखता है कि वहाँ पर सम्बन्ध एक तरह से बिलकुल उलट जाता है, वो इक्वेशन एकदम बदल जाता है... माँ एक तरह से बेटी हो जाती है और बेटी माँ हो जाती है।"

रेत समाधि उपन्यास फ़्लैश बैक पद्धति में भारत - पाक विभाजन से सम्बद्ध एक कथा है।उपन्यास रेत समाधि दो महिलाओं और एक औरत की मौत की कहानी है। लेकिन इसमें इसके साथ और भी बहुत कुछ है। यह जिंदगी और मौत का आख्यान है। इस कहानी में समय को लांघने की प्रत्याशा है। गीतांजलिजी ने ठीक ही लिखा है- महिलाएँ स्वयं कहानियाँ हैं । उपन्यास में हम जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे स्त्री पात्र धीरे-धीरे क्षुद्र ग्रह से ब्रह्मांड बनती चली जाती हैं। जैसे नदियों के मिलने से संगम

होता है, वैसे ही कई कहानियों के मिलने से महागाथा तैयार होती चली जाती है।

उपन्यास की नायिका अस्सी वर्षीय एक माँ है।माँ आम माताओं की तरह स्थिर नहीं, युवा की तरह चंचल है तमन्नाओं से भरी हुई। माँ कथा को अस्थिर करती है। कथा में अराजकता लाती है। वह जिन पन्नों पर नुमाया होती है, वह पन्ने पगले से जाते हैं। रेत समाधि की कहानी खत्म न होने वाली कहानी है। कथा का समापन एक जिंदादिल सपने की मौत की याद दिलाता है। नहीं, मैं नहीं उठूँगी से अम्मा की स्वर-ध्वनि बदलती है- "नहीं, नहीं मैं नहीं उठूँगी। अब तो मैं नहीं उठूँगी। अब्ब तो मैं नइ उठूँगीþ अब्ब तो मैं नइई उठूँगी। अब मैं नयी उठूँगीþ अब तो मैं नयी ही उठूँगी"[1] और अचानक अम्मा गायब हो जाती है बुद्ध की टूटी मूर्ति के साथ। थाने में वह अपने पति का नाम अनवर बताती है- ये सभी प्रसंग पाठक के मन में रहस्य पैदा करते हैं- कौन है यह अनवर? उपन्यास का यह मनोवैज्ञानिक पक्ष है जिस सन्दर्भ में आलोचक रवींद्र त्रिपाठी का कहना है- "यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की एक ऐसी गाथा है जिसमें बीता समय मनुष्य के मन में बना रहता है; दबाये नहीं दबता; और वो आगे चलकर अचानक उबलकर बाहर आता है तथा बहुत कुछ अस्त-व्यस्त कर देता है। अम्मा के साथ तो यही होता है"[2] धीरे-धीरे उपन्यास में इन सभी रहस्यों से परदा उठता है।

धूप उपन्यास का दूसरा अंक है जिसमें 'धूप' उपन्यास का दूसरा अंक है जिसमें अम्मा अपनी लेखिका बेटी के यहाँ रहने चली जाती है। यह दुनिया बेटी की दुनिया है जो अब तक मुक्तजीवन जीती आई थी लेकिन अब जब अम्मा साथ रहने लगी है तब अम्मा बेटी और बेटी अम्मा बन गयी- "बेटी ने माँ बनकर माँ को बेटी बनाया और उनके माथे पे हाथ फेरा।"[3] बेटी के साथ रहते माँ के हाव-भाव में एक अलग ही रौनक आ गयी है। वह रोज़ी के साथ हर पल, हर दिन नई ज़िन्दगी जी रही है- गाउन पहनना, रंग-रोगन लगाना, उबटन मलना- यह सारा उपक्रम अपने पहले पति अनवर से मिलने की तैयारी है जिससे वह भारत-पाक विभाजन के दौरान बिछुड़ गयी थी और मज़बूरी में जिन्हें अपना घर अलग-अलग बसाना पड़ा। 'धूप' अंक में ही रोज़ी किन्नर की हत्या का भी जिक्र है। रोज़ी के साथ ही अम्मा ने पाकिस्तान जाने की योजना बनायी थी। उसकी हत्या के बाद अम्मा अपनी बेटी के साथ पाकिस्तान पहुँचती है और इसी के साथ शुरू होता है उपन्यास का तीसरा अंक 'हद-सरहद' थार रेगिस्तान में भारत-पाक विभाजन के समय अपने साथ हुई घटना को अम्मा तितलियों को बताती है जो पहली कहानी- कहानियाँ, दूसरी कहानी-मूर्ति और वो लड़की, तीसरी कहानी- रेत समुंदर, चौथी कहानी- डूबों का होना के माध्यम से व्यक्त हुई है।

कहानियों में ज़िक्र है कि किस तरह बलवाइयों ने सोलह वर्षीय चंदा और घर की बाकी महिलाओं को ट्रक पर लाद दिया और बड़े कैदखाने में डाल दिया। यही चंदा को बूढ़े बुद्ध की मूर्ति दिखी थी जिसे उसने कभी अजायबघर में अनवर के साथ देखा था- "एक कमरे में मूर्ति। ऐसी तो अजायबघर में देखी। अनवर के संग। हूबहू। मेरा अनवर"[4] दूसरी कहानी 'मूर्ति और वो लड़की' में रोज़ी के रहस्य से पर्दा उठता है। जो रोज़ी अम्मा से मिलने-जुलने अक्सर आया-जाया करती थी और जिससे अम्मा का काफ़ी दोस्ताना सम्बन्ध था- वह रोज़ी अम्मा को भारत-पाक विभाजन के समय में मिली थी-"बाजी, छोटी लड़की सिसकी। जो उसका हाथ पकड़े थी जैसे कभी नहीं छोड़ेगी। दूसरे हाथ में मेरी मूर्ति। बच्ची को खींचती हुई मैं रेत पर भागी। वो बच्ची रोज़ी थी।"[5] भारत-पाक विभाजन के दर्दनाक दौर में जिस लड़की ने अम्मा का हाथ पकड़ा था उसे अम्मा जानती भी नहीं थी लेकिन दोनों एक-दूसरे से ऐसे मिले जैसे जन्मों के बिछुड़े हुए मिल रहे हों। और यह सिलसिला जीवनपर्यंत चलता रहा। यही बच्ची आगे चलकर रोज़ी(जो कि एक हिजड़ा है) के रूप में पाठकों के सामने आती है जिसे अम्मा के घर वाले रोज़ी बुआ कहकर बुलाते हैं। तीसरी कहानी 'रेत समुंदर' रेगिस्तान में चढ़ते, फिसलते, गिरते, लुढ़कते लोगों का ज़िक्र हैþ यह घटना भारत-पाक विभाजन के समय हुई थी जिसमें चंदा और छोटी बच्ची रोज़ी भी शामिल थे। चौथी कहानी 'डूबों का होना' चंदा और रोज़ी के बिछुड़ने की कहानी है। दोनों बचते-बचाते कंटीली झाड़ी में उलझ पड़े थे। पूरी देह घाव से भरी हुई। सुबह नींद खुली तब चंदा ने खुद को किसी छावनी के अस्पताल में पाया। मूर्ति बगल रखी थी लेकिन छोटी बच्ची रोज़ी ग़ायब थी। इसी बीच घोषणा हुई कि दो मुल्कों के बीच सरहद खिंच गयी

है। 'रेत-समाधि' उपन्यास में इन चारों कहानियों का जुड़ाव पाठक को फ्लैशबैक में ले जाता है, जहाँ उपन्यास के कई रहस्य खुलते हैं। चंदा का अस्सी साल की उम्र में पाकिस्तान पहुँचने का कारण, रोज़ी और चंदा का सम्बन्ध, चंदा और अनवर का सम्बन्ध और उपन्यास की शुरुआत से ही उपस्थित बुद्ध की मूर्ति का रहस्य भी इन चारों कहानियों के माध्यम से प्रकट होता है।

यह उपन्यास भारत-पाक विभाजन की त्रासदी व्यक्त करता है। इस विभाजन ने कितने रिश्ते तबाह कर दिए... कितने टूट गए... उलझ गए। नवाज़ भाई जो पाकिस्तानी पुलिस महकमे में है, इन्हीं उलझनों का ज़िक्र करते हुए कहते हैं- "बस मनाइए कि दोनों मुल्कों में तमीज़ तौफीक लौटे, सयानफ आए, और आज़ादी से आएँ-जाएँ। वर्ना यों ही ढेरों बेमतलब कैद में पड़े रहेंगे। दोनों तरफ़। मेरे ख़ालू सत्रह साल से उधर हैं। उनकी आँख से एक आँसू ढुलक आता है"[6] सरहद का सही मर्म अम्मा (चंदा) समझाती है- "गधो, सरहद कुछ नहीं रोकती। दो अंगों के बीच का पुल होती है। रात और दिन के बीच। ज़िन्दगी मौत के। पाने खोने के। वो जुड़े हैं। उन्हें अलग नहीं कर सकते"[7] अम्मा की मौत भी खैबर में हुई- वह पीठ के बल गिरी सीधी सतर- उसकी मौत गोली लगने से हुई। वह रेत में समाधिस्थ हुई। उपर्युक्त विश्लेषण से हम समझ सकते हैं कि 'रेत-समाधि' का कैनवास कितना व्यापक व वैविध्यपूर्ण है।

'रेत-समाधि' की पात्र-योजना बृहद है। अम्मा, बेटा-बहू, बहन, पोता, रोज़ी के साथ-साथ भरी-पूरी प्रकृति भी उपन्यास में मौजूद है। उपन्यास के तीसरे अंक हद-सरहद में तितलियों का ज़िक्र है जिसे अम्मा अपनी कहानी सुनाती है- "तितली चुपचाप सुन रही है औरत की कहानी। वो सुनाती है। फिर रुककर फिर सुनाती है"[8] उपन्यास में कौवों की भी उल्लेखनीय भूमिका है। उपन्यास की भाषा की बात करें तो उपन्यासकार ने अपनी भाषा खुद से गढ़ी है। 'रेत -समाधि' एक ऐसी रचना है जो उपन्यास को-अपनी विधा को एक नये ही रूप, नयी संवेदना, नयी भाषा, नये शिल्प से समृद्ध कर देती है।

धूप, पीठ, हद-सरहद तीन अंकों में विभाजित रेत-समाधि अस्सी वर्षीय चंदा के भारत से पाकिस्तान पहुँचने की रोमांचक यात्रा है। पीठ, धूप, हद-सरहद- इन तीनों अंकों से गुज़रते हुए पाठक के सामने रहस्य खुलता है कि अम्मा चंद्रप्रभा का पहला विवाह भारत-पाकिस्तान विभाजन से पहले पाकिस्तान के अनवर से हो चुका था। लेकिन विभाजन के बाद दोनों बिछड़ गए। अस्सी वर्षीय चन्दा का पाकिस्तान पहुँचना उसके इस रहस्य से परदा उठाता है। मूल कथा के साथ किन्नर रोज़ी की कहानी किन्नर-विमर्श को प्रत्यक्ष करती है। कथा में प्रकृति भी जुड़ती चली जाती है। ये सभी पक्ष उपन्यास के कैनवास को व्यापक बनाते हैं।

रेत-समाधि कथा लेखन की एक नई छटा है। इसकी कथा, कालक्रम, संवेदना, कहन, सब अपने निराले अंदाज में चलते हैं। हमारे चिर-परिचित हदों-सरहदों को नकारते लांघते। जाना-पहचाना भी बिलकुल अनोखा और नया है यहाँ।

सन्दर्भ :

1. गीतांजलिश्री, रेत-समाधि, प्रथम संस्करण-2018 ई., राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-13

2. समालोचन पत्रिका, अंक-दिसंबर,2019ई.

3. श्री, गीतांजलि, रेत-समाधि, प्रथम संस्करण-2018 ई., राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-125

4.श्री, गीतांजलि, रेत-समाधि, प्रथम संस्करण-2018 ई., राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-84

5.वही, पृष्ठ-305

6.वही, पृष्ठ-307

7.वही, पृष्ठ-331

8.वही, पृष्ठ-298

9.तद्भव, जनवरी 2022, पृष्ठ-100

असोसिएट प्रोफेसर

हिन्दी विभाग

महात्मा गाँधी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

माने ढ़ोने की हाइकू की काबिलियत : डॉ रंजीत रविशैलम के हाइकुओं के तनासिर में

प्रो. डॉ. मनु

अरबी जुबान में जनम लेके फ़ारसी में फली फूली फिर उर्दू में फ़ैली हिंदी और कई जदीद ज़बानों में पहुंची ग़ज़ल उर्दू व हिंदी का मशहूर सिन्फ़ है। वैसे ही 'ग़ज़ल की तरह' हाइकु भी एक शायराना क़िस्म है, सिन्फ़ है, शकल है, क्योंकि उसके सृजन केलिए, अपने अपने नियम होते हैं, क़ानून होते हैं । यह हाइकु जापानी जुबां के अदब का एक मशहूर क़िस्म है। गैर जापानी ज़ुबानों में लिखे जाने वाले हाइकू की तादाद उसकी मक़बूलियत का गवाह है । हर अदबी सिन्फ़/काव्य विधा उसकी मिट्टी की तहज़ीब, परंपरा, चली आती हुई लोगों की ज़िन्दगी, उसके दायरे के भीतर चलने वाले जलवा, पर्व, त्योहार, आदि का फसल है। यह हाइकू भी जापान की तहज़ीब, परंपरा व वहां के रंग रूप को इज़हार करनेवाला अक्स है। जापानी अदब को जाने बिना हाइकु को समझना बेकार है , क्योंकि ग़ज़ल को जानकर भी न जानने वाले भी हमारे हुजूम में मौजूद हैं; क्योंकि काफिया, रदीफ़, मत्ता, मत्तला, मिसरा, शेर, अशआर आदि जान लिए बिना ग़ज़ल बे जान है। पहले ही यह कह चुका हूँ कि हाइकु का जन्म जापान में हुआ है और वह लम्बी उमर तय कर चुका है; करीब एक हज़ार पांच सौ सनों का लम्बा सफ़र। हाइकु की इब्तिदा या शुरु आत 'रेंगा'[1] नामी एक बड़ी जापानी नज़्म के शुरुआती हिस्से के तौर पर हुई है। शुरुआती बहर के तौर पर लिखा हुआ यह हाइकु 'होक्कू' नाम से भी जाना जाता है और वक़्त के साथ साथ इन्हें वाहिद या एकल नज़्मों के तौर पर लिखा जाने लगा। हाइकु को इसका वर्तमान नाम उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में जापानी लेखक मसाओका शिकी द्वारा दिया गया था।"[2] "रेंगा की शास्त्रीयता को स्वीकार न करके रेंगा-पद्धति व शैली में रची गयी हलके क्षणों की अभिव्यक्ति का नाम हुआ 'हइकाइ नो' रेंगा। हाइकाइ धीरे धीरे गंभीर कविता के रूप में परिवर्तित हो गया।"[3] जापानी कविता के मशहूर कवि लोग सोकान और मोरिटाके ने नज़्मों के लिए अपनी रोज़ानी ज़िन्दगी से विषय चुन लिया है तो हाइकु अवाम बन गया। इसे नयी सिन्फ़ के तौर पर साध लिया गया। फिर यह हाइकाइ हाइकु नाम से जानने लगा। हर क़िस्म हर वक़्त प्रखर बनकर अदब में रह नहीं पायेगी। वक्त के खयालत के मुताबिक़ उसके प्रवाह में रुकावट आ जाएगी। आजकल कोई महाकाव्य या खंडकाव्य लिखते नहीं है। वक्त की मांग बड़ी बात है। आजकल दोहा भी कम लिखा जाता है। हरिवंशराय बच्चन जी के बाद रुबाई भी कम लिखी जा रही है। मगर ग़ज़ल की रचना किसी रुकावट के बिना लगातार होती जा रही है। फिल्म की दुनिया ने ग़ज़ल को आबाद बना दिया है। हाइकु को अदबी क़िस्म की तरह मील का पत्थर बनाने का श्रेय मात्सुओ बाशो (1644-1694) को है।

हाइकु तीन क़तारों में तरतीब संग सजाये हुए इंसानी ज़िन्दगी के जज़्बात है। इसकी पहली क़तार विषय की ओर निशाना देती है तो दूसरी क़तार जज़्बात की ओर तीसरी व आखिरी क़तार एहसास की । हाइकु में इंसान को फितरत का एक अटूटे हिस्से की तरह बयान किया गया है। आज हाइकु जापानी जुबां और अदबी दायरे से बाहर पहुँच गया है, जब कोई क़िस्म या विधा अपना ज़ुबानी दायरा लाँधने लगता है तो समझ लेना उसकी ताक़त ए तरक्की अज़ीम है।

हिन्दुस्तानी ज़ुबानों में "पहली बार सुब्रह्मण्यम भारती ने सं 1916 में जपानियल कवितकल, शीर्षक लेख में हाइकु का जिक्र किया । गीतांजली का प्रणेता व नोबेल इनाम विजेता रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने हाइकु की चर्चा करते हुए जापानी शायर बाशो की दो रचनाओं को बंगला जुबां में तरजुमा किया था।"[4] असमिया के नीलमणि फूकन, बंगला के बुध देव बासु व आनंद शंकर रे, गुजराती के निरंजन भगत, मराठी के सदानने रेगे, हिंदी में अज्ञेय आदि ने हाइकु का अनुवाद किया है।

केरल में हाइकु के संकलन का प्रकाशन सब से पहले डॉ रंजीत रविशैलम ने किया है। तीन सौ साठ

हाइकुओं का संकलन हाइकु नाम से उन्होंने किया है। . फेबियन बुक्स, मावेलिक्करा, केरल ने इसका प्रकाशन किया है।

मासाओका शिकी अंतर्राष्ट्रीय हाइकु पुरस्कार हाइकु की मक़बूलियत की याद दिलाने वाला पुरस्कार है, यह सन 2002 से शायर शिकी के नाम पर दिया जाता है।

हिंदू मज़हब से जुड़े अफसानाओं के मुताबिक भगवान चित्रगुप्त की पैदायशी ब्रह्मा जी के चित्त से हुई है। देवताओं के और यम के मददगार के तौर पर भगवान चित्रगुप्त की पूजा की जाती है। उनका काम इंसान के भले बुरे अमालों का हिसाब या जोखा परख के रखना है। हाइकुकार डॉ रंजीत ने अपने एक हाइकु में चित्रगुप्त का जिक्र किया है और बताया है कि हर जीव की कुंडली लिखनेवाला चित्रगुप्त है। यहां दुनिया में ज्योतिषी कुंडली लिखते हैं, हर जीव की पैदायशी के वक्त के मुताबिक़। लेकिन पुराण के मुताबिक़ चित्रगुप्त ही हर इंसान के भले बुरे की कुंडली लिखते हैं। मौत के बाद जहन्नुम में भेजना है या जन्नत ? यह तय करनेवाला चित्रगुप्त है। वे यम का मददगार ज़रूर ही है। इंसान की ज़िन्दगी के भले बुरे के हिसाब की और चित्रगुप्त की अमाल पर हाइकुकार डॉ रंजीत ने हमारा ध्यान कशिश कर दिया है। उनके लफ़्ज़ों में "चित्रगुप्त ने/ लिखी हैं कुंडलियां/हर जीव की"[5]

मौजूदा हिन्दुस्तान में चितारोहण दरअसल सतिप्रथा है। यह एक सामाजिक कार्यक्रम है। आरोहण ईमानदारी और दुनियादारी की अलामत है। चितारोहण का मायना है चिता पर चढ़ना। माद्री का चितारोहण महाभारत की बहुत बड़ी बात है। बाद में यह औरत के खिलाफ सज़ा मानकर क़ानूनी मदद से रोक दिया गया। हाइकुकार ने चिता को एक नये प्रतिमान के तौर पर ले लिया है। जैसे कि चिता मन है। इसलिए चितारोहण का मायना दिलारोहण है। आरोहण ईमानदार और प्रतिष्ठा की निशाँ है। अब इस फरेबी दुनिया में दिल पर ईमानदारी का एहतराम हो ही रहा है। हाइकुकार के लफ़्ज़ में "चितारोहण /आज भी चलता है /चिता है मन"[6]

ज़मीन पे ज़िन्दगी के वजूद के लिए बीज की बुआई लाज़िम है। यह हाइकु हमारी फ़िकर को माहोलियत की तरफ़ मुड़ा देता है। इंसान को अपनी ज़िन्दगी की सहूलियत के लिए अपनी आबोहवा को, माहोलियत को बनाये रखना है। डॉ रंजीत आह्वान कर देते हैं कि मिट्टी में बीजों का रोपण करें। उससे हमारा भविष्य उज्ज्वल हो जाये यानी हमारा मुस्तक़बिल रोशन हो जाए । इस चिंता का रोपण हर इंसानी दिल में होना चाहिए।

गर्मी के दुशवार थप्पड़ से धरती झुलस रही है। मिटटी को बचाना है, धरती को रहने के क़ाबिल बना देना है। पेड़-दरख़्त, पौधे, बेलें गायब होते जा रहे हैं। आज बीजारोपण लफ़्ज़ इस्तेमाल करके वे हमें चेतावनी देते हैं कि मिटटी को बीजों से आबाद कर दें, नहीं है तो यह ज़रूर ही बर्बाद हो जाए, रेगिस्तान बन जाये । चिलचिलाती धूप में झुलस कर पेड़ की तह में रिहाई के लिए आनेवाले हर मुसाफिर के दिल में दरख़्त से जो इबादत है, वह ईस्वर से भी बड़ा है। दरख़तों की तह का धुप अँधेरा आइन्दा की रिहाई है। पांच सात पांच हुरूफों को तीन कतारों में सृजन करके उन्होंने दुनिया वालों को चेतवनी दे दी कि हमारे भविष्य से भी दुनिया का भविष्य ही सबसे श्रेयस्कर है। उन्हीं के लफ़्ज़ों में - "बीजारोपण / है भविष्य के लिए / चिंतन आज"[7]

अक्सर शायर लोग कहते हैं कि चिता और चिंता में कोई फ़र्क़ नहीं है। कबीर साहब ने चिंता को चिता या जनाज़े से भी बढ़कर माना है ; क्योंकि चिता जड़ों को जलाती है तो चिंता ज़िंदा रहनेवालों को जलाती है। यहां हाइकुकार ने उपमा अलंकर की मदद से चिंता को चिता के सामान मान लिया है। चिंता को उपमेय और चिता को उपमान की तरह इस्तेमाल करके हाइकु को खूबसूरती से सजा दिया है। जहाँ कहीं कोई चिता जलते हुए दिखाई दे, हाइकुकार की अंदाज़ याद दिलाती है कि गहरी चिंता चिता के समान है। एक ओर उन्होंने चिता को उपमेय के तौर पर ज़ाहिर किया है तो दूसरी ओर चिता को विशेष्य के तौर पर लाद दिया है। उनके लफ़्ज़ हू ब हू यहाँ काबिले जिक्र है। गहरी चिंता /चिता चिंता सामान /याद जो आयी।[8]

इस मुश्किल वक़्त में उम्मीद और भरोसा रखना मुश्किल है। मीत भी फरेब दे कर चला जाता है। अपने व पराये समकालीन ख्यालात के तजुर्बों को डॉ रंजीत ने हुरूफों को एक तस्वीर के तौर पर दुनिया के क़ारी के सामने उकेर दिया है। उनके अनुसार दुनिया आस्तीन का

सांप है। आस्तीन का सांप एक मुहावरा है , जिसका मायना है यार से भी फरेब दिखाना। दुनिया आस्ते आसकन्द हो जाता है यानी दुनिया आहिस्ते आहिस्ते फ़ना हो जाती है, तबाह होती जाती है। हाइकु छोटी नज़्म है , उसमें मुहावरे का इस्तेमाल करके उन्होंने हाइकु को बेमिसाल कर दिया है। यह न सिर्फ मायने की नज़र से ही नहीं फन की नज़र से भी एक बढ़िया हाइकु है, क्योंकि मुहावरे की मदद से मायने को बेहतर तर्ज़ से उकेरा है। सांप को लेके कई छोटी छोटी नज़्मों का सृजन हुआ है / अज्ञेय का कहना अब भी यादों में है। अरे सांप तुम्हारा बसेरा गांव नहीं है, शहर ही होता है।

मंदिर जाकर हम सांप की पूजा करते हैं। मगर घर आये सांप को हम मार डालते हैं। सांप पर हम भरोसा रख न पायेगा इसलिए समकालीन तजुर्बों व एहसासों पर भरोसा रखते हुए डॉ रंजीत ने इस हाइकु का सृजन किया है। उनके लफ़्ज़ों में - दुनिया आज/ है आस्तीन का सांप।/ आस्ते आस्कन्द"[9]

निशानी फारसी का मुसकर लफ़्ज़ है। इसका मायना पहचान का चिह्न, शिनाख़्त की अलामत, यादगार बग़ैरह। हाइकुकार डॉ रंजीत की नज़र के मुताबिक हर निशानी शानदार चिह्न है, अलामत है । यह शानदार अलामत कभी तर्ब की होगी या कभी कर्ब की होगी। गुज़री हुई जिंदगी में हमारी निशानी, हमारी शिनाख्त, हमारी याददाश्त औरों के लिए यक़ीनन मददगार है। शानदार निशानी उमर ए रफ्ता का बड़ा तोफहा है। नाम का मायना अगर किसी से पूछे तो जवाब देने में किसी न किसी को दुशवारी का सामना करना पड़ता है , क्योंकि नाम का मायना भी एक निशानी है, पहचाने का चिह्न है, शिनाख्त की अलामत है । वैसे ही लिंग का मायना भी पहचानने का चिह्न है, इसलिए हाइकुकार का मानना सौ फ़ीसद दुरस्त है कि निशानी शानदार अलामत है। समाजी , तहज़ीबी नुक्त ए नज़र में निशानी पाना भी मुश्किल है। ज़िन्दगी के सफर में पहचान मिलना ज़रूर ही एक तोहफा है। दूसरों को हमारी ज़िन्दगी याद रखने के लिए हमें कुछ क़दमों के निशानात छोड़ने होंगे। यह कभी आसान चीज़ नहीं हैं। हाइकुकार के लफ़्ज़ों में

"हर निशानी /शानदार चिह्न है/सुखदुख का/" [10]

अर्थों के गुम्फन करने में जो जुमले क़ाबिल होते हैं, उनका सृजन सराहनीय है, उसकी तख़लीक़ क़ाबिले तारीफ़ है । तालीमी मैदान में दाखिल होनेवाला हर शागिर्द यह सोचता है कि तालीम हासिलशुदा होने के बाद जल्दी ही जल्दी नौकरी मिल जाए। फिर घर के मां बाप बेटे बेटी के लिए पदों की तालाश करते रहते हैं । पदों किए आवेदक आवेदन करते रहते हैं। मगर यह जरूरी नहीं कि उन्हें पद मिल जाय । हाइकुकार लिखते हैं कि नौकरी की तलाश दर असल धनार्जन है। . यह सही है कि धन अर्जित करना ही हर आवेदक का ही नहीं, हर इन्सान का मकसद होता है। वेतनमान या तनख्वाह पैमाना देखकर ही लोग पदों के लिए आवेदन पत्र भेजते हैं। इसलिए यह हाइकु बहुत ही बढ़िया है . हाइकुकार के लफ़्ज़ों में - "पदों के लिए / करते आवेदन /धन अर्जन /"[11]

कुछ अल्फ़ाज़ के इशारे से उसकी मुकम्मल तस्वीरें लोगों के दिल दिमाग़ में उभर आ जायें । कुछ शहरों व क़स्बों के नाम भी इसी तरह के हैं । अयोध्या सुनने पर रामायण, राम रावण युद्ध, राम लक्ष्मण, राम हनुमान, भरत, सीता, लंका, कौशल्य, कैकेई, सुमित्रा आदि न जाने कितने ही कितने किरदार, वाक़या व हादसा अचानक लोगों के दिल में उभर आ जाते हैं। उसमें ज़माना कदीम से लेकर जदीद तक के तमाम वाकए, पूरा संघर्ष शामिल होते हैं, सियासी व मज़हबी कश्मकश की दास्तानें एक के बाद दीगर उभर आयेंगी। साकेत अयोध्या है जाननेवाले कितने लोग हमारे माशरे में मौजूद है? वैसे ही एक विषय को हाइकुकार ने इस हाइकु में इज़हार किया है।

"पाटलिपुत्र /राजधानी मौर्य की/आज पटना /"[12]

पाटलिपुत्र का जदीद नाम पटना है और यह मौर्य साम्राज्य की राजधानी थी। ईसा के जन्म के पहले ईसा पूर्व 600 में इसका इतिहास शुरू होता है । मगध सल्तनत की याद दिलाने में यह हाइकु सक्षम है। पुरानी सल्तनत की याद दिलाने में ये तीन क़तारें सलाहियत रखती हैं। यह मगध शहनशाह आजातशत्रु की राजधानी थी । जयशंकर प्रसाद का नाटक अजातशत्रु हिंदी नाट्य अदब का बहुत ज़्यादा ज़ेर ए बहस तारीखी कोशिश है । यह हाइकु यक़ीनी तौर पर हमें कुछ तारीखी चीज़ों को दरियाफ़त करने की तरग़ीब देता है। पटना बिहार का बदला हुआ शहर है। पाटलिपुत्र से

पाटना। वैसे ही बिहार का पुराना नाम विहार था। नया नाम मुसलमानों की देन है, तोहफ़ा है। विहार का मायना है बौद्ध भिक्षुओं व रहबरों का आरामगाह। पंद्रहवी सदी के मुसलमान हक़दारों ने सबसे पहले इसको बिहार कहा था।

मेहगस्तनीज इस शहर को देखकर दंग रह गया था । कदीम पटना की शोहरत सात बहरों को पार कर चुकी थी । दुनिया के लोग उस शहर में आते थे। इस शहर का और एक नाम कुसुमपुर था। हाइकुकार का अंदाज़ा बहुत बढ़िया है, क्योंकि आजकल अपनी संस्कृति व तहज़ीब के मुताबिक भारत के कई इलाकों का नाम बदल गया है, जैसे कि कालीघट से कलकत्ता का बदलाव। प्रयागराज से इलाहाबाद (अल्लाहबाद/Allahabad) 450 सनों के बाद फिर इलाहाबाद से प्रयागराज। बॉम्बे से मुंबई, मद्रास से चेन्नई आदि इसकी मिसाल हैं । इसलिए जदीद नाम का जिक्र करके पुराने नाम की याद दिलाना आजकल की सियासत में खूब चलती है । इसलिए आगामी भविष्य में बिहार का भी नाम बदल जाए । एक हाइकु, एक अंदाज हमें कहीं न कहीं ले जाने में काबिल है । यह हाइकु इस वजह से बेमिसाल है। "मनुसंहिता /विद्याजनार्थ लिखा / उत्तम कार्य /"(13)

डॉ रंजीत के इस हाइकु में बग़ावत व ग़दर पोशीदा है, क्योंकि समकालीन दौर में मनुसंहिता पर ख़तरा साया हुआ है। मनुसंहिता का दूसरा लफ़्ज़ है मनुस्मृति। इसमें दलितों और औरतों के ख़िलाफ़ कई ऐसे श्लोक हैं, आयात हैं, जो बग़ावत के लिए आग लगाने में, भड़काने में काफ़ी कामयाब हैं। बस इतना तो ही नहीं, चार्वाक, दलित, समाजवादी, समतावादी और सुर्ख़ वाले इसे साध लेने के ख़िलाफ़ है। आज के हिन्दुस्तानी सियासत में मनुस्मृति का हल्लाबोल है, खलबली है । मामला जो भी हो सारे ज़ुबानों के मनुष्य से तालुक़ रखनेवाले मेन, मनुज , आदम, आदमी आदि (10) (गूगल सर्च मनुसंहिता) मनु लफ़्ज़ से असरदार है। दुनिया का पहला मर्द मनु है। मनु एक नहीं कई है। स्वायंभुव मनु ही मनुसंहिता का प्रणेता है। मनु की संतान होने की वजह सारे जनों को मानव कहलाये गये हैं। जदीद दौर का महाकाव्य कामायनी में भी जयशंकर प्रसाद ने यह साबित करने की कोशिश की है कि मनु अंतिम देव है और साथ ही साथ वह आदि पुरुष भी है, वह आदि मानव है। हाइकुकार ने इसमें लिखा है कि मनुसंहिता ज्ञान का भण्डार है, इल्म का ज़खीरा है, अक़्ल का खज़ाना है। इसलिए यह उत्तम है, बढ़िया है, महेरा है, माहिर है। यह ज्ञानार्जनार्थ लिखा गया है, इल्म हासिल करने के लिए लिखा गया है। इसमें मज़हब और सियासत के बारे में बयां किया गया है। इसमें समाज का संचालन और व्यवस्था के बारे में लिखा गया है, यानी माशरे के अमल और निज़ाम पर लिखा गया है।

इस शोध के दरमियान मुझे अख़बारों की सुर्ख़ियों में यह देखने का मौक़ा मिला है कि संस्कृत के महान पंडित डॉ के. जी. पौलोस को केंद्र साहित्य अकादमी का भाषा सम्मान पुरस्कार मिला है। उन्होंने अपने बेटे का नाम मनु रखा है तो बेटी का नाम स्मृति रखा है। बैसे ही उनका घर ज्ञान का भण्डार 'मनुस्मृति' बन गया है।

कहा जाता है बरसात जब जब आती है आसमान पर बादल गरजने लगते हैं बिजली के तेज़ नूर ज़मीन को छूने लगता है, पहाड़ों, मैदानों, समतलों व हमवारों में कुकुरमुत्ते का जनम होता है। वह स्वयंभू है, अपने आप में उग जाता है, बढ़ता है, बढ़ते जाता है, जीवन्तता कितना दुश्वार है , कितना मुहाल है, सवेदना कितना दस्तर है, कठिन है , कुकुरमुत्ते को देखकर जम्हूर यह समझ नहीं पाते हैं कि इस समाज में ज़िंदा रहने की मजबूरियाँ कितनी है , परेशनियां कितनी हैं, मसाइल कितने हैं? एहसास कितनी घेराबंदी है, महदूद है? मशरूम कुकुरमुत्ते के लिए हिन्दी जुबां में कम इस्तेमाल लिया जानेवाले लफ्ज़ है। निराला जी ने कुकुरमुत्ते पर अपनी तशवीश या फिकर का इज़हार किया है। उन्होंने सर्वहारा तबक़े के अलामत के तौर पर कुकुरमुत्ते को साध लेते हुए सरमायेदार पर तंज़ करने के लिए ले लिया है। खुद मैंने भी अपनी फिकर के बहाव में अपनी नज़्मों में कुकुरमुत्ते का जिक्र किया है। हमें तो कुकुरमुत्ते का आंदोलन या तहरीक नहीं चाहिए, हमें तो झींकर का आंदोलन चाहिए । बारिश के गुज़ारन के साथ ही साथ कुकुरमुत्ता भी खत्म हो जाये, मगर समाज के लिए, हुजूम के लिए , माशरे के लिए, इंसान के लिए, अवाम के लिए, सियासत के लिए हमें ऐसा इंक़लाब चाहिए जहाँ समझौते की कोई गुंजाईश न हो, अँधेरे के चले जाने के बाद ही झींगुर की आवाज़ ख़त्म हो जाएगी। फिर जब

अँधेरा आ जाये तो झींगुर कभी भी कहीं भी खामोश न रहेगी। कुकुरमुत्ता एक बार की बरसात में उग जाता है, फिर चन्द दिनों के पूरन चाँद की तरह वह गुमसुम हो जाता है; अक्सर बारिश के चले जाने के पहले ही । हर शायरी शख़्स की देखने की तर्ज़ मुख़्तलिफ़ होगी, आज़ाद होगी । इसलिए ही महान कविवर निराला जी की, हाइकुकार डॉ रंजीत जी की और लिखेक एवं नज़्मकार प्रो मनु की कुकुरमुत्ते पर नज़र डालने की तर्ज़ बिलकुल मुख़्तलिफ़ रही, अलग रही । हाइकुकार का कुकुरमुत्ते पर नज़र देखें

"कुकुरमुत्ता /न बरसाती साग /उगते आप/" [14]

यह जानना किसी के लिए भी दिलचस्पी का बाइस होगा कि लफ़्ज़ों ने अपने मायने कैसे कैसे हासिल किये हैं? फिर कुछ फ़िकरेन के लिए यह अजीब बात बन गयी है कि लफ़्ज़ों को इतने मायने कैसे कहाँ से मिले? एक लफ़्ज के लिए एक मायना खूब मशहूर है, जब कि दूसरा कम मक़बूल है। इसलिए जुबां में मायने के साथ लफ़्ज़ों का बहाव व रिश्ता खूब अजीब सा लगता है। एक लफ़्ज़ के कई मायने शायरों के लिए दरअसल खुश क़िस्मती की बात है; क्योंकि श्लेष और यमक के इस्तेमाल से नज़्म की शान में ज़रूर ही इज़ाफ़ा होगा। कहीं कहीं कभी कभार शायर अपने जज़्बों व मुद्दों के इज़हार में अल्फ़ाज़ को अलामती मायने दे देते हैं। इसलिए कभी कभार शायर अपना शब्दकोश भी बना देते हैं। लफ़्ज़ की जो ताक़त है , इसके बूते पर लफ़्ज़ों का अभिधार्थ के अलावा लफ़्ज़ के लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ भी होते हैं। यह इंसान की अदबी दुनिया के लिए एक बहुत बड़ा तोहफ़ा है।

रंजीत जी ने अपने एक हाइकु में लफ़्ज़ और मायने के बारे में लिखा है। इसमें उन्होंने लफ़्ज़ के बदलते मायने की तरफ अपनी तवज्जो कशिश कर दी है। उनके लिए जुबां यक़ीनन बहता हुआ दरिया है। इस बहाव में कुछ अल्फ़ाज़ों के मायने मिट जाए और नये मायने मिल भी जाये। वक़्त के गुज़रान के साथ साथ हमारे ख्यालात भी बदल जाते हैं। तब्दीली के बग़ैर दुनिया की कोई भी चीज़ वजूद नहीं। यही तब्दीली हमें तरक़्क़ी की ओर ले जाती है। लफ़्ज़ और मायने का रिश्ता अटूट है, मगर अटूट होने के बावजूद भी तब्दीली कभी कभार मुमकिन है। हाइकुकार के लफ़्ज़ों में "शब्दों का अर्थ/कभी बदलता है/ कभी अभिधा/ "[15]

आगे वो यह कहने में हिम्मत दिखाते हैं कि लफ़्ज़ अपने युग युगों के गर्दिश में अपना अपना वजूद मायना यानी मौजूदा माना यानी अभिधार्थ भी छोड़ देगा। इसी तानसिर से मिलता जुलता मेरा अपना एक हाइकु पेश करना चाहता हूँ।।

लफ्ज़ आ जाए/गीतों में शान बढे /फिर लबों में /

लफ़्ज़ हर मुँह पे ज़ाहिर होगा, मगर जब अदब में आ जाने पर उसकी शान और भी बढ़ जाएगी। अगर वही लफ़्ज़ किसी गाने में म्यूसिक़ी के साथ आ जाये तो सब लोगों के कानों व लबों में पहुँच कर उसकी क़दमो क़ीमत बढ़ जाएगी। इसलिए हर लफ़्ज़ गाने के कतारों में पहुँचना चाहता है।

शब्दों का अर्थ /कभी बदलता है /कभी अभिधा/रंजीत जी का दूसरा हाइकु इसकी ताईद कर देता है।

"मील पत्थर/केवल न पाषाण /अनोखा काम"[16]

पत्थर ज़रूर ही पाषाण है। पत्थर का पर्यायवाची शब्द संग, पत्थर, पाषाण, पाहन, शिला वग़ैरह हैं । मील से पत्थर का जुड़ाव सब जानते हैं। बहर में अपने एहसास को बाँदा बनाने के लिए ही हाइकुकार ने मील का पत्थर की जगह मील पत्थर लिखकर इसे एक अलमाती अक्स देकर अपनी हुनर का इज़हार किया है। इस पत्थर का काम व फ़र्ज़ यक़ीनन अनोखा है , अजीब है , अजब है।

संगमर्मर/सिर्फ़ पत्थर नहीं है/क़ीमती चीज़।

संग पत्थर है। वह सिर्फ़ पत्थर नहीं। हर घरो इमारत के फ़र्श पे बिछाने वाला क़ीमती पत्थर है। अपने यह हाइकु पेश करते हुए मैं रंजीत जी के हाइकु की तसदीक़ करने के क़ाबिल महसूस करता हूँ। जो भी हो हाइकु मेरे लिए बहर में बन्दी नानो नज़्म है।

संदर्भ :

1.https://en.wikipedia.org/wiki/Haiku

2.https://en.wikipedia.org/wiki/Haiku

3. डॉ रंजीत रविशैलम : हाइकु (338) पृ. 113

प्रोफसर & विभागाध्यक्ष

केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय, कासरगोड

आत्मकथा

देवयानम्

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

बारहवाँ देवपद - तृश्शिवपेरूर (तृश्शूर)

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

तृश्शूर जिले के चेरुतुरुत्ती नामक गाँव में स्थित केरल कलामण्डलम नामक संस्था केरल की कलाओं के, विशेष रूप से कथकली के उद्धार एवं प्रचार-प्रसार के लिए स्थापित की गई थी। महाकवि श्री वल्लत्तोल नारायण मेनोन और श्री मुकुंद राजा के कठोर परिश्रम से इस सांस्कृतिक केंद्र की स्थापना हुई थी जो आज संसार भर में सुप्रसिद्ध है। तृश्शूर में रहते समय वहाँ जाकर कभी कभी भाषण देने एवं कलाकारों के साथ परिचय पाने का अवसर मुझे मिलता था। महाकवि और उनके परिवार के साथ भी मेरा घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गया। महाकवि के "संस्कृत नाटकों के अनुवाद" नामक ग्रंथ की भूमिका मैंने लिखी है जो कि अत्यंत गर्व की बात है।

तृश्शूर में रहते समय वहाँ के श्रीरामकृष्ण आश्रम, श्री शारदा मठम आदि आध्यात्मिक संस्थाओं के संन्यासी-संन्यासिनियों के साथ मेरा हार्दिक संबंध स्थापित हो गया था। उनका परिचय यों देता हूँ - श्री ईश्वरानंद स्वामी, शक्रानंद स्वामी, मृढ़ानंद स्वामी, धीरप्राण माताजी, अजय प्राण माताजी, गंभीरानंद स्वामी, सद्भवानंद स्वामी इत्यादि। श्री रंगनाथानंद स्वामी जी के साथ भी मेरा निकट का संबंध था जो श्रीरामकृष्ण मठ एवं मिशन के अध्यक्ष थे। "भगिनी निवेदिता" नामक मेरे पुस्तक की भूमिका उन्होंने लिखी है। स्वामी जी का लिखा एक बृहद् ग्रंथ है "Eternal values for the changing society" जिसका मलयालम भाषा में भाषांतरण मैंने किया है। 'श्रीवत्सम' नामक मासिक में यह प्रकाशित हो गए थे। कोच्चिन देवस्वम बोर्ड (Cochin Devaswom Board) के 'क्षेत्रदर्शनम' नामक मासिक में सिस्टर निवेदिता की जीवनी मैंने प्रकाशित की है। 'शाण्डिल्य भक्तिसूत्रम' की व्याख्या जो मैंने लिखी थी उसका प्रकाशन भी 'क्षेत्रदर्शनम' मासिक में क्रमशः हुआ था। बाद में ओट्टप्पालम (पालक्काट जिला) के श्रीरामकृष्ण आश्रम के स्वामी कैवल्यानंद जी ने उसका संपादन कर पुस्तक रूप में प्रकाशित किया था।

तृश्शूर के श्री केरलवर्मा कॉलेज के अध्यापक का काम केवल 1969 मार्च तक था। उसके बाद तिरुवनंतपुरम के केरल विश्वविद्यालय के मलयालम विभाग में मेरी नियुक्ति हो गई थी। तृश्शूर में रहते मेरी ज़िंदगी में जितने अपूर्व एवं अनुपम अनुभव हुए थे वह कभी न भूल सकता हूँ। उसका दूर-व्यापी प्रभाव मुझ पर पड़ा था। अपने प्रिय विद्यार्थियों एवं अन्य प्रियतम व्यक्तित्वों से खेद के साथ मुझे बिदा लेना पड़ा। मन में मधुर स्मृतियाँ बाकी रह गईं। महाकवि श्री वल्लत्तोल ने अपनी कविता 'चोरा तिऱक्कणम' (रक्त उबले) में यों लिखा है - सूरज की किरणें आसमान से बहुत दूर धरती पर गिरती हैं; फिर भी वे सूरज में हैं उसी प्रकार जीवन-यापन के लिए दूरदेशों में जानेवाले केरल की संतानें हमेशा केरलीय ही हैं; चाहे वह देश स्वर्ग तुल्य सर्वश्रेष्ठ क्यों न हो। (जननी जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है।)

(क्रमशः)

आत्मकथा

ज़िंदगी : एक लोलक

मूल : श्रीकुमारन तंपी **अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार**

एक बड़ा शब्द सुना था न माँ..... वह सुनकर ही मैं जाग पड़ा था। इसको मैंने ही जगा दिया था.... दूसरा बड़ा भाई तब भी ऊँघते हुए पड़े हैं। सो जाने के बाद कानों के पास 'चेंड़ा' (केरल का विशेष वाद्य यंत्र) बजाने पर भी वे जागने के नाम भी नहीं लेते... शायद कुछ हिल जाएँगे। करवट लेकर फिर सो जायेंगे...।

वावुत्तत्तन ने माँ का हाथ पकड़ते हुए कहाः "माँ उठिए.... डरने से क्या फ़ायदा। हम दरवाज़ा खोलकर देखेंगे..."

"देखने कोई आवश्यकता नहीं, 'जो हुआ सो हुआ' के भाव में माँ ने कहा : "मेरा पारस वृक्ष तो गया..."

पारस वृक्ष तो पूरब में है न माँ, शब्द दक्षिण भाग में ही सुनाई दिया हैं..."

"क्या, दक्षिण भाग में है... यकीन है क्या?"

"जी हाँ, माँ।"

"फिर तो मेरा 'चावड़ी' (उपभवन) गई... मेरी कोलोत्तु भगवती..."

"हम दक्षिणी दरवाज़ा खोलकर अगवाड़ा में खड़े रहेंगे..."

वावुत्तत्तन ने अंधकार में दक्षिण की ओर चलते हुए कहा। प्रांगन में बीच बीच में आकर अप्रत्यक्ष होनेवाली बिजली ही एकमात्र प्रकाश है....

"मेरा बेटा यहाँ बैठ, डरो मत। माँ जाकर देखने के बाद आऊँगी...।"

"नहीं, मैं भी आऊँगा"।

मैंने माँ की धोती पकड़ी। ग्यारह साल की आयु का वावुत्तत्तन आगे, माँ पीछे और सबसे पीछे पर्याप्त नींद न मिलने की शिकायत के साथ आठ साल की आयु का दूसरा बड़ा भाई भी चले। बहुत प्रयत्न करके बाद दरवाज़ा खोला। सब कहीं अंधेरा है। कुछ भी दिखाई नहीं देता... एक बिजली के आने का हमने इंतज़ार किया। पहले बिजली और कुछ देर से उसका भाग रूपी गर्जन आया।

बिजली की वह प्रभा अग्नि बनकर माँ के मस्तिष्क पर जल गई।

एक नारियल का पेड गिरकर हमारी 'चावड़ी' टूट चुकी थी। नारियल के पेड़ के ऊपर छत, वैभव नष्ट हुए किरीट सी पडी है।

हे महापापियो, मुझे धोखा क्यों दिया... बडी बहन से मैंने कल भी बताया था कि उस नारियल के पेड को काटना चाहिए। वह लंबा नारियल का पेड हमारे आँगन की ओर तिरछा बनकर गिरने की स्थिति में खड़ा रहता था।

'महापापियो' नामक शब्द से माँ ने बड़ी बहन गौरिक्कुट्टि तंकच्ची और उनके पति कुमारा पिल्ला को ही लक्ष्य किया था। मेरी बड़ी माँ और जीजाजी। करिंपालेत्तु अहाते का एक भाग दादी के नाम पर मिलने पर जीजाजी अहाते के उत्तरी कोने में एक घर बनाकर उसका नाम 'कुमारामंगलम' रखा। पत्नी के नाम पर मिलने वाले अहाते में बनाए गए घर को उन्होंने अपना ही नाम रखा था। कुमारापिल्ला का रहनेवाला घर 'कुमारामंगलम'। हमारे घर के पूर्व में आंगन से लगकर बड़ी माँ का अहाता पड़ा है। करिम्पालेत्तु आँगन की, करीब तीस फीट चौड़ाई ही है। उसके बाद

दादाजी का बनाया बाड स्थित है। बाड के मध्य में करीब मात्र एक व्यक्ति के लिए चलने लायक जगह खुला रखा है। इसका कारण भी है। कुमारामंगलम के लोगों को मंदिरों एवं मुख्य दूकानों के स्थित पूर्व दिशा की ओर जाने के लिए हमारे अहाते के द्‌वारा ही चलना पड़ता है। बुद्‌धिमान जीजाजी ने दस्तावेज़ में ऐसी एक शर्त रख दी थी...।

सूर्योदय हो गया... वर्षा थम गई। माँ अगवाड़े से उठकर, धोती कसकर पहनती हुई आँगन में उतरी... दुःख एवं क्रोध के आवेग में कुमारामंगलम की ओर चल पड़ीं....

मैं और भाइयों ने माँ का पीछा किया.... कुमारामंगलम का दरवाज़ा बंद था। किसी को भी वहाँ दिखाई नहीं देता है। माँ ने ज़ोर से पुकारा : "इच्चेई (बडी बहन).... यहाँ तक तो आइए... तुम्हारे नारियल का पेड गिरने से मेरी 'चावड़ी' टूट गई... दो-तीन वर्षों से मैं कहती आयी थी न, कि नीचे का भाग सडने वाले उस नारियल के पेड को काटना चाहिए...."

अंदर से कोई आवाज़ नहीं सुनाई दी। माँ ज़ोर से चिल्लात्ती रहीं। असहनीय हो जाने पर कुमारापिल्ला जीजाजी बाहर आए : "भवानी, मेरे घर के आँगन में आकर भौंकती क्यों है...

कुत्ते ही भौंकते हैं, मैं कुत्ता नहीं हूँ। अगर अंधा नहीं है तो आकर देखो, मेरी 'चावड़ी' की अवस्था। मैं उसका मर्मत करके किराये पर देने की इच्छा रखती थी...

जीजाजी दो फ़ीट आगे आए:

"नारियल का पेड तो स्वयं गिरा था न? मैंने धक्का देकर तो नहीं गिरा दिया था।"

"मैंने तो बताया था न नारियल के पेड को काटना चाहिए, कि वह तिरछा खडा है... तुमने सुना नहीं.... मेरे पास तुम्हारी जैसी संपत्ति नहीं है। 'चावड़ी' का नए सिरे से निर्माण करके मुझे देना ही चाहिए...।"

व्यंग्य के स्वर में ठहाका लगने हुए जीजाजी ने कहा : चावडी (उपभवन) बनाकर देगा। उसके लिए तेरे पिताजी कैतोलत्तु वेलुप्पिल्ला - जो मर गए- उसे पुनर्जन्म लेकर आना चाहिए.... नहीं तो शराब पीकर घूमनेवाले तेरे पति से कहो। बड़े 'ताङकळ' परिवार का रिश्ता.... हर साल पत्नी को संतान दिलाने के लिए ही मुँह दिखाएगा... प्रसव का समय होने पर बिना कुछ दायित्व निभाए चला जाएगा।

माताजी ने एक फीट आगे जाकर हाथ बढ़ाते हुए गर्जन किया : "तुम तो बच्चों को अक्षरों की शिक्षा देनेवाले अध्यापक हो... क्या बच्चों को यही भाषा सिखाते हो? मेरे पति को नीचा दिखाने की आवश्यकता नहीं। अगर वे बुरे हैं तो मैं सहन कर लूँगी?..."

माँ अंदर देखकर बडी बहन को बुलाई : "बड़ी बहन-बड़ी बहन... बड़ी बहन आप कुछ भी सुनती नहीं क्या... यहाँ तक तो आ जाइए....

बड़ी माँ की आवाज़ तो नहीं आई। एक व्यंग्य की हँसी के साथ जीजाजी ने कहा- "मेरी पत्नी तेरे समान आवारा नहीं; इस घर का मालिक मैं हूँ। वह मुझको और मेरी संतानों के लिए खाना बनाकर देगी।"

माँ का दुख गहरी पीडा में बदल गया। पिताजी को नीचा दिखाते हुए की गई बात-चीत सुनते ही माँ टूट गई। दादाजी पत्नि, संतान और संपत्ति से दिखानेवाला दायित्व तो अपना पति दिखाता नहीं, यह सचाई भी माँ जानती है...

'हर साल बच्चे को जन्म देती है', इस विशेषण ने भी माँ के दिल को चोट पहुँचा दिया। हम तीन बच्चे ही जीवित हैं फिर भी तब तक माँ सात बच्चों को जन्म दे चुकी थीं। वावुत्तत्तन के बाद माँ ने एक बच्ची को ही जन्म दिया था। पर जन्म के बाद पंत्रहवें दिन पर मेरी बड़ी बहन बननेवाली वह लड़की (हमारे परिवार में... छोटे भाई बड़ी बहन को उप्पाप्पा कहते हैं। उप्पाप्पा ओप्पोल शब्द से बना है) मर गई। मेरे बाद तीन बच्चों को भी माँ ने जन्म दिया। तीनों जन्म के बाद कुछ ही दिनों के अंदर यह दुनिया छोड़कर चले गए। पति की लापरवाही से पूर्ण बर्ताव, बच्चों की मृत्यु एवं रिश्तेदारों के विरोध ने माताजी को धीरे धीरे दृढ़चित्त बना दिया होगा। (क्रमशः)

सिनेमा सीरियल अभिनेता श्री अरुण मोहन का आदर हो रहा है।

सभा में आयोजित ओणम त्योहार का उद्घाटन
कवि श्री अजि दैवपुरा कर रहे हैं।

राजकीय महिला महाविद्यालय में आयोजित
पखवाड़ा समारोह का एक दृश्य

पुरस्कार वितरण का दृश्य

RNI No. 7942/1966
Date of Publication : 15-10-2024
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI
OCTOBER 2024

Vol. No. 61, Issue No.07
Regn. No. KL/TV(S) 381/2022-2024
Price Rs. 25/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

प्रो.डी.तंकप्पन नायर द्वारा रचित 'के वासुदेवन पिल्लै स्मृतिकाव्य' शीर्षक पुस्तक का लोकार्पण श्री.वी.पी.जॉय कर रहे हैं।

हिन्दी पखवाड़ा समारोह के समारंभ का उद्घाटन भाषण वी.एस.एस.सी. के निदेशक श्री.उण्णिकृष्णन कर रहे हैं।

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित, प्रो.डी.तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair & Dr.Renjith Ravisailam